वक्तव्य

सन् १९३४ ई० के जनवरी मास मे राजपूताना, मध्यभारत और ग्वालियर के हाई-स्कूल तथा इंटरमीजिएट-शिक्षा बोर्ड के मन्त्री महोदय ने बोर्ड के प्रस्ताव के अनुसार मुझसे हाई-स्कूल-कक्षाओं के लिये एक पद्य-सङ्कलन-ग्रन्थ प्रस्तुत करने का विशेष आग्रह किया। वृद्धावस्था और शारीरिक अस्वस्थतावश मैंने इस कार्य को ग्रहण नहीं करना चाहा, परन्तु कतिपय माननीय साहित्यप्रेमी मित्रों के विशेष अनुरोध से मुझे यह स्वीकार करना पड़ा। अप्रेल मास मे चुने हुए पद्यों की अस्थायी सूची बोर्ड-कार्यालय में भेजी गई। तदनन्तर हिन्दी-कोर्स-कमेटी के सदस्यों के साथ दो दिन तक पूर्ण विचार-विनिमय होने के पश्चात् संग्राह्य पद्यों का अन्तिम निर्णय हुआ।

इस सङ्कलन-ग्रन्थ मे प्राचीन और अर्वाचीन काल के छब्बीस (अष्ट-छाप के कवियों की अलग गिनती से तीस) प्रमुख कवियों के पद्यो का संग्रह हुआ है। जहां तक हो सका, इसमे हिन्दी के प्रतिनिधि-कवियों की रचनाओं को स्थान दिया गया है, जिससे विद्यार्थियों को भिन्न-भिन्न प्रकार की शैलियों का ज्ञान हो सके। प्रत्येक कवि के पद्यों के चुनाव में यह लक्ष्य रहा है कि जिन छात्रों के लिये यह सङ्कलन तैयार हुआ है, उन्हें उनके समझने में कठिनाई न हो। छात्रों के लिये कवियों और उनकी शैली के परिचय का महत्त्व जान परिशिष्ट में उनकी संक्षिप्त जीवनी देकर कविता-सम्बन्धी विशेषताओं का निर्देश किया गया है। इस संग्रह में अनुचित शृङ्गारात्मक कविताओं को स्थान न देते हुए स्फूर्तिदायक एवं छात्रोपयोगी पद्यों का चुनाव किया गया है। राजस्थान और मध्यभारत के प्राचीन डिंगल-साहित्य मे भी उच्च कोटि की कविता मिलती है, जिसका इधर कुछ वर्षों से प्रकाशन आरम्भ हुआ है। छात्रों को इसका यत्किञ्चित् परिचय कराने के लिये कविराजा बाँकीदास के कुछ नीति-सम्बन्धी दोहो को चुना गया है। सङ्कलन-ग्रन्थों मे डिंगल-कविता का प्रवेशमात्र करने के

उद्देश्य से इस संग्रह में सरल डिंगल का केवल सवा पृष्ठ रखा गया है, परन्तु आशा है कि भविष्य में तैयार होनेवाले सङ्कलनों में डिंगल-साहित्य को भी उसका यथोचित स्थान प्राप्त होगा। पुस्तक के आधी छप जाने पर प्रेस ने बतलाया कि सब कविताओं का 'मैटर' निर्धारित पृष्ठ-संख्या में नहीं छप सकेगा। तब कविजनों की संख्या मे कमी न करते हुए विवश उनके कतिपय पद्यों को घटाना पड़ा।

आशा है, पद्यों की सुरुचि-सम्पन्नता और उपादेयता को ध्यान में रखते हुए यह सङ्कलन हाई-स्कूल-कक्षाओं के लिये उपयोगी सिद्ध होगा और इसे पढ़कर छात्रों में काव्य-प्रेम की वृद्धि तथा उच्च कोटि के पद्य-साहित्य के अध्ययन की ओर प्रवृत्ति होगी। प्रस्तुत ग्रन्थ के बहुत थोड़े समय में छपने पर भी इसका प्रूफ-संशोधन सावधानी पूर्वक हुआ है। फिर भी छपते समय कहीं कहीं अनुस्वार तथा मात्राओं के टूटने और अक्षरों के हट जाने से कुछ शब्दों का रूपान्तर हो गया है, अतः सहृदय पाठक उन्हें सुधार-कर पढ़ें।

मैं उन सब कविजनों का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने अपनी उत्कृष्ट रचनाओं का इस पुस्तक में संग्रह करने की मुझे सहर्ष अनुमति प्रदान की है। साथ ही प्रयाग के इंडियन प्रेस और काशी-नागरीप्रचारिणी सभा के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन आवश्यक है। अन्त में अपने आयुष्मान् पुत्र प्रोफ़ेसर रामेश्वर ओझा, एम्० ए० का नामोल्लेख आवश्यक है, क्योंकि यदि सङ्कलन, सम्पादन, संशोधन आदि सब कार्यों में मुझे उसका पूर्ण सहयोग और अनवरत परिश्रम सुलभ न होता, तो इस सङ्कलन-ग्रन्थ को हिन्दी-प्रेमियों के सम्मुख उपस्थित करना मेरे लिए असम्भव नहीं तो अतिदुष्कर अवश्य था।

अजमेर,
वैशाखी पूर्णिमा,
सं० १९९२ वि०

गौरीशङ्कर-हीराचन्द ओझा.

विषय-सूची

---

* कालक्रमानुसार इनका स्थान भूषण के पश्चात् होना चाहिए —सं०

† अन्तिम दो पद्य गीतावली के हैं।

पद्य-रत्न-माला

कबीर

साखी

सात समँद की मसि करौं, लेखनि सब बनराइ।
धरती सब कागद करौं, हरि-गुण लिख्या न जाइ॥ १॥

कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूँढै बन माहिं।
ऐसैं घटि घटि राम हैं, दुनिया देखै नाहिं॥ २॥

सो साईं तन में बसै, ज्यूँ पुहपन में बास।
कस्तूरी के मिरग ज्यूँ, फिर फिर सूँघै घास॥ ३॥

पैंडे मोती बीखर्‌यो, अंधा निकस्या आइ।
जोति बिना जगदीस की, जगत उलंघ्यों जाइ॥ ४॥

हरिया जाँणैं रूँखड़ा, उस पाणी का नेह।
सूका काठ न जाँणई, कबहूँ बूठा मेह॥ ५॥

झिरमिर झिरमिर बरखिया, पाँहण ऊपरि मेह।
माटी गलि सैंजल भई, पाँहण वोहि तेह॥ ६॥

कमोदनी जलहरि वसै, चन्दा वसै अकासि ।
जौ जाही का भावता, सो ताही कै पास ॥ ७ ॥

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पंडित हुवा न कोइ ।
ढाई अच्छर प्रेम का, पढ़ै सु पंडित होइ ॥ ८ ॥

चातक सुतहि पढ़ावही, आन नीर मति लेइ ।
मम कुल यही सुभाव है, स्वाति-बूँद चित देइ ॥ ९ ॥

पपिहा को पन देखि करि, धीरज रहे न रंच ।
मरते दम जल में पड़्या, तऊ न बोरी चंच ॥ १० ॥

साँझ पड़ी, दिन आथव्यो, चकवी दीन्ही रोइ ।
चल चकवा वा देस में, रैण कदे नहिं होइ ॥ ११ ॥

अंबर कुंजाँ कुरलियाँ, गरजि भरे सब ताल ।
जिनिपै गोविंद बीछुटे, तिनकै क़वण हवाल ? ॥ १२ ॥

आँखड़ियाँ झाँई पड़ी, पंथ निहारि निहारि ।
जीभड़ियाँ छाला पड़्या, राम पुकारि पुकारि ॥ १३ ॥

विरह-कमंडल कर लिये, वैरागी दो नैण ।
माँगै दरस- मधूकरी, छक्या रहै दिन रैण ॥ १४ ॥

नाम भजौ तौ अब भजौ, बहुरि भजौगे कब्ब ?
हरियर हरियर रूँखड़ा, इंधण हो गये सब्ब ॥ १५ ॥

जौ ऊग्या सो आँथवै, फूल्या सौ कुँमिलाइ ।
जौ चिणिया सो ढहि पड़ै, जौ आया सो जाइ ॥ १६ ॥

काची काया, मन अथिर, थिर थिर काम करंत ।
ज्यूँ ज्यूँ नर निधड़क फिरै, त्यूँ त्यूँ काल हसंत ॥ १७ ॥

माली आवत देखि करि, कलियन करी पुकार ।
फूले फूले चिन लिये, काल्हि हमारी बार ॥ १८ ॥
कहा चुनावै मेड़ियाँ, लाँबी भींत उसारि ?
घर तौ साढ़े तीन हथ, घना त पौने च्यारि ॥ १९ ॥
कबीर नौबति आपणी, दिन दस लेहु बजाइ ।
ए पुर-पट्टन ए गली, बहुरि न देखै आइ ॥ २० ॥
सातौं सबद जु बाजते, घरि घरि होते राग ।
ते मंदिर खाली पड़े, बैसण लागे काग ॥ २१ ॥
कबीर माला काठ की, कहि समझावे तोहि–
मन न फिरावै आपणा, कहा फिरावै मोहि ? ॥ २२ ॥
तन को जोगी सब करैं, मन कौ बिरला कोइ ।
सब बिधि सहजै पाइये, जो मन जोगी होइ ॥ २३ ॥
साधु भया तौ क्या भया, बोलै नाहिं बिचार ।
हतै पराई आतमा, जीभ बाँधि तरवार ॥ २४ ॥
साधू ऐसा चाहिये, जैसै सूप सुभाइ ।
सार-सार कौ गहि रहै, थोथा देइ उड़ाइ ॥ २५ ॥
खूँदन तौ धरती सहै, बाढ़ सहै बनराइ ।
संत सहै दुरजन-बचन, दूजै सहा न जाइ ॥ २६ ॥
करगस सम दुरजन-बचन, रहे संत जन टारि ।
बिजुली परै समुद्र में, कहा सकैगी जारि ? ॥ २७ ॥
काच, कथीर, अधीर नर, जतन करत है भंग ।
साधू कंचन ताइये, चढ़ै सवाया रंग ॥ २८ ॥

संत न बाँधै गाँठड़ी, पेट-समाता लेइ।
साईं सूँ सनमुख रहै, जहाँ माँगै तहाँ देइ ॥ २९ ॥
साईं इतना दीजिये, जामें कुटुम समाइ।
मैं भी भूका ना रहूँ, साधु न भूखा जाइ ॥ ३० ॥
जौ जल बाढ़ै नाव में, घर में बाढ़ै दाम।
दोऊँ हाथ उलीचिये, यहु सज्जन को काम ॥ ३१ ॥
केला तबहि न चेतिया, जब ढिग लागी बेरि।
अबके चेते क्या भया, काँटनि लीन्हो घेरि ॥ ३२ ॥
सूरा तब ही परखिये, लड़ै धणी कै हेत।
पुरिजा-पुरिजा कटि पड़ै, तऊ न छाँड़ै खेत ॥ ३३ ॥
कायर बहुत पमाँवहीं, बहकि न बोलै सूर।
काम पड्याँ ही जाँणिये, किसकै मुख परि नूर ॥ ३४ ॥
रितु बसंत जाचक भया, हरखि दिया द्रुम पात।
तातैं नव पल्लव भया, दिया दूर नहि जात ॥ ३५ ॥
सुख कै माथे सिल परै, नाँम हृदय तैं जाइ।
बलिहारी वा दुक्ख की, पल-पल नाँम रटाइ ॥ ३६ ॥

पद

करम-गति टारे नाहिं टरी।
मुनि वसिष्ठ से पंडित ज्ञानी, सोध के लगन धरी।
सीता-हरन, मरन दसरथ को, वन में बिपति परी ॥
कहँ वह फन्द कहाँ वह पारधि, कहँ वह मिरगचरी।
सीया को हरि लै गो रावन, सुबरन लंक जरी ॥

नीच हाथ हरिचंद बिकाने, बलि पाताल धरी।
कोटि गाय नित पुन्न करत नृप, गिरगिट जोन परी॥
पांडव जिनके आप सारथी, तिनपर बिपति परी।
दुरजोधन को गरब घटायो, जदुकुल नास करी॥
राहु-केतु औ भानु-चन्द्रमा, विधि संजोग परी।
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो, होनी होके रही॥ १॥

माया महा ठगिनि हम जानी।
निरगुन फाँस लिये कर डोलै, बोलै मधुरी बानी॥
केसव के कमला है बैठी, सिव के भवन भवानी।
पंडा के मूरत है बैठी, तीरथ में भई पानी॥
योगी के योगिन है बैठी, राजा के घर रानी।
काहू के हीरा है बैठी, काहू के कौड़ी कानी॥
भक्तन के भक्तिनि है बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहै 'कबीर' सुनो हो सन्तो, यह सब अकथ कहानी॥ २॥

नाम सुमिर, पछतायगा।
पापी जियरा लोभ करत है, आज काल उठि जायगा॥
लालच लागी जनम गँवाया, माया भरम भुलायगा।
धन जोबन का गरब न कीजै, कागद ज्यों गलि जायगा॥
जब जम आय केस गहि पटकै, ता दिन कछु न बसायगा।
सुमिरन भजन दया नहिं कीन्हीं, तो मुख चोटा खायगा॥
धरमराय जब लेखा माँगे क्या मुख लेके जायगा।
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो, साधो सङ्ग तरि जायगा॥ ३॥

मलिक मुहम्मद जायसी

गोरा की वीर-गति

मतैं बैठि बादल औ गोरा। सो मत कीज परै नहिं भोरा॥
सुबुधि सौं ससा सिंघ कहँ मारा। कुबुधि सिंघ कूआँ परि हारा॥
जस तुरकन राजा छर साजा। तस हम साजि छोड़ावहिं राजा॥
सोरह सै चँडोल सँवारे। कुँवर सँजोइल कै बैठारे॥
पद्मावति कर सजा बिवानू। वैठि लोहार न जानै भानू॥
साजि सबै चंडोल चलाये। सुरँग ओहार मोति बहु लाये॥
भये संग गोरा बादल बली। कहत चले—'पद्मावति चली'॥
विनवा बादसाह सौं जाई—। अब रानी पद्मावति आई॥
विनती करैं आइ हौं दिल्ली। चितउर कै मोहि स्यो है किल्ली॥
एक घरी जौ अज्ञा पावौं। राजहिं सौंपि मँदिर महँ आवौं॥

इहाँ उहाँ कर स्वामी दुऔ जगत मोहि आस।
पहिले दरस देखावहु तो पठवहु कैलास॥ १॥

अज्ञा भई—'जाइ एक घरी'। छूँछि जौ घरी फेरि विधि भरी॥
चलि बिवान राजा पहँ आवा। सँग चंडोल जगत सब छावा॥
पद्मावति कै भेस लोहारू। निकसि काटि बँदि कीन्ह जोहारू॥
उठा कोपि जस छूटा राजा। चढ़ा तुरंग, सिंघ अस गाजा॥
गोरा बादल खाँड़ै काढ़े। निकसि कुँवर चढ़ि चढ़ि भये ठाढ़े॥
लेइ राजा चितउर कह चले। छूटेउ सिंघ मिरिग खलभले॥
चढ़ा साहि चढ़ि लाग गोहारी। कटक असूझ परी जग कारी॥

फिरि गोरा बादल सौं कहा— । 'गहन छूटि पुनि चाहै गहा ॥
चहुँ दिसि आवै लोपत भानू । अब इहै गोइ इहै मैदानू' ॥
तुइ अब राजइ लेइ चलु गोरा । हौं अब उलटि जुरौं भा जोरा ॥
तौ पावौं बादल अस नाऊँ । जो मैदान गोइ' लेइ आऊँ ॥

आजु खड़ग चौगान गहि, करा सीस रिपु गोइ, ।
खेलौं सौंह साह सौं, हाल जगत महँ होइ ॥ २ ॥

तब अगमन होइ गोरा मिला— । 'तुइ राजइ लेइ चलु, बादला ! ॥
मैं अब आउ भरी औ भूँजी । का पछिताव आउ जौ पूजी ॥
बहुतहि मारि मरौं जौ जूझी । तुम जिनि रोएहु तौ मन बूझी' ॥
कुँवर सहस संग गोरा लीन्हे । और बीर बादल सँग कीन्हें ॥
गोरहि समदि मेघ अस गाजा । चला लिये आगे करि राजा ॥
गोरा उलटि खेत भा ठाढ़ा । पूरुख देख चाव मन बाढ़ा ॥

आव कटक सुलतानी, गगन छपा मसि माँझ ।
परति आव जग कारी, होति आव दिन साँझ ॥ ३ ॥

फिरि आगे गोरा तब हाँका । 'खेलौं, करौं आजु रन साका' ॥
ओनई घटा चहूँ दिसि आई । छूटहिं बान मेघ झरि लाई ॥
भई बगमेल, सेल घनघोरा । औ गजपेल, अकेल सो गोरा ॥
सहस कुँवर सहसौ सत बाँधा । भार पहार जूझ कर काँधा ॥
लगे मरै गोरा कै आगे । बाग न मोर घाव मुख लागे ॥
जैस पतंग आग धँसि लेई । एक मुवै, दूसर जिउ देई ॥
टूटहि सीस, अधर धर मारै । लोटहिं कंधहिं कंध निरारै ॥
कोई परहिं रुहिर होइ राते । कोई घायल घूमहिं माते ॥

कोइ खुर खेह गये भरि भोगी। भसम चढ़ाइ परे होइ जोगी॥
घरी एक भारत भा, भा असवारन्ह मेल।
जूझि कुँवर सब निबरे, गोरा रहा अकेल॥ ४॥
गोरै देख, साथि सब जूझा। 'आपन काल नियर भा' बूझा॥
कोपि सिंघ सामुहँ रन मेला। लाखन्ह सौं नहि मरै अकेला॥
लेइ हाँकि हस्तिन्ह कै ठटा। जैसे पवन बिदारै घटा॥
जेहि सिर देइ कोपि करवारू। स्यों घोड़े टूटै असवारू॥
लोटहिं सीस कबंध निनारे। माठ मजीठ जनहुँ रन ढारे॥
खेलि फाग सेंदुर छिरकावा। चाँचरि खेलि आगि जनु लावा॥
हस्ती घोड़ धाइ जो धूका। ताहि कीन्ह सो रुहिर भभूका॥
भइ अज्ञा सुलतानी—बेगि करहु एहि हाथ।
रतन जात है आगे लिये पदारथ साथ॥ ५॥
सबै कटक मिल गोरेहि छेंका। गूँजत सिंघ जाइ नहिं टेका॥
जेहि दिसि उठै सोइ जनु खावा। पलटि सिंघ तेहि ठाँव न आवा॥
तुरुक बोलावहिं—बोलै बाहाँ। गोरैं मीचु धरी जिउ माहाँ॥
जिनि जानहु गोरा सो अकेला। सिंघ कै मोंछ हाथ को मेला॥
सिंघ जियत नहिं आपु धरावा। मुये पाछ कोई घिसियावा॥
करै सिंघ मुख सौंहहि दीठी। जौ लगि जियै देइ नहिं पीठी॥
'रतनसेन जो बाँधा मसि गोरा के गात।
जौ लगि रुहिर न धावौं तौ लगि होइ न रात'॥ ६॥
सरजा बीर सिंघ चढ़ि गाजा। आइ सौंह गोरा सौं बाजा॥
पहुँचा आइ सिंघ असवारू। जहाँ सिंघ गोरा बरियारू॥

मारेसि साँग, पेट महँ धँसी। काढ़ेसि हुमुकि, आँति भुइँ खसी॥
भाट कहा—'धनि गोरा, तू भा रावन राव।
आँति समेटि बाँधिकै, तुरय देत है पाँव'॥ ७॥

कहेसि अंत अब भा भुइँ परना। अंत त खसे खेह सिर भरना॥
कहिकै गरजि सिंघ अस धावा। सरजा सारदूल पहँ आवा॥
सरजै लीन्ह साँग पर घाऊ। परा खड़ग जनु परा निहाऊ॥
बज्र क साँग बज्र कै डाँड़ा। उठी आगि तस बाजा खाँड़ा॥
मानहु बज्र बज्र सौं बाजा। सब ही कहा परी अब गाजा॥
तस मारा हठि गोरै, उठी बज्र कै आगि।
को नियरै नहिं आवै, सिंघ-सदूरहि लागि॥ ८॥

तब सरजा कोपा बरिबंडा। जनहु सदूर केर भुजदण्डा॥
कोपि गरजि मारेसि तस बाजा। जानहु टूटि परि सिर गाजा॥
ठाँठर टूट, फूट सिर तासू। स्यों सुमेर जनु टूट अकासू॥
धमकि उठा सब सरग पतारू। फिरि गइ दीठि फिरा संसारू॥
भइ परलय अस सब ही जाना। काढ़ा खड़ग सरग नियराना॥
तस मारेसि स्यों घोड़े काटा। धरती फाटि सेस-फन फाटा॥
गोरा परा खेत महँ, सुर पहुँचावा पान।
बादल लेइगा राजा, लेइ चितउर नियरान॥ ९॥

महात्मा सूरदास

विनय-वाणी

अविगत गति कछु कहत न आवै ।
ज्यों गूँगे मीठे फल को रस, अन्तर्गत ही भावै ॥
परम स्वादु सब ही जु निरन्तर, अमित तोष उपजावै ।
मन बानी को अगम अगोचर, सो जानै जो पावै ॥
रूप रेख गुन जाति जुगति बिनु, निरालंब मन चकृत धावै ।
सब बिधि अगम विचारहिं तातें, 'सूर' सगुन लीला पद गावै ॥

जापर दीनानाथ ढरे ।
सोइ कुलीन बड़ो सुन्दर सोइ, जिनपर कृपा करे ॥
राजा कौन बड़ो रावन तें, गर्वहिं गर्व गरे ।
रङ्क सु कौन सुदामाहू तें, आपु समान करे ॥
रूपव कौन अधिक सीता तें, जन्म वियोग भरे ।
अधिक पुरुष कौन कुबिजा तें, हरि पति पाई वरे ॥
योगी कौन बड़ो शंकर तें, ताको काम छरे ।
कौन विरक्त अधिक नारद सों, निसि दिन भ्रमत फिरे ॥
अधम सु कौन अजामिलहू तें, यम तहँ जात डरे ।
'सूरदास' भगवन्त भजन बिन, फिर फिर जठर जरे ॥

अविगत गति जानी न परै ।
मन बच अगम अगाध अगोचर, केहि बिधि बुधि सँचरै ॥
अति प्रचण्ड पौरुष बल पाये, केहरि भूख मरै ।

बिन आसा बिन उद्यम कीने, अजगर उदर भरै ॥
रीते भरै भरे पुनि ढारै, चाहे फेरि भरै।
कबहुँक तृन बूड़ पानी में, कबहूँ सिला तरै ॥
बागर तें सागर करि राखै, चहुँ दिसि नीर भरै।
पाहन बीच कमल बिगसाही, जल में अगिनि जरै ॥
राजा रङ्क रङ्क तें राजा, लै सिर छत्र धरै।
'सूर' पतित तरि जाइ तनिक में, जो प्रभु नेकु ढरै ॥

अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल ।
काम क्रोध को पहिरि चोलना, कंठ बिषय की माल ॥
महामोह के नूपुर बाजत, निन्दा सब्द रसाल।
भरम भर्‌यो मन भयो पखावज, चलत कुसंगति चाल ॥
तृष्णा नाद करत घट भीतर, नाना बिधि दै ताल।
माया को कटि फेंटा बाँध्यो, लोभ तिलक दै भाल ॥
कोटिक कला काछि दिखराई, जल थल सुधि नहीं काल।
'सूरदास' की सबै अबिद्या, दूरि करौ नँदलाल ॥

जन्म सिरानो अटके अटके ।
राज काज सुत पितु की डोरी, बिन बिबेक फिर्‌यो भटके ॥
कठिन जु ग्रंथि परी माया की, तोरी जात न झटके।
ना हरि-भजन न सन्त-समागम, रह्यो बीच ही लटके ॥
ज्यों बहु कला काछि दिखरावै, लोभ न छूटत नटके।
'सूरदास' सोभा क्यों पावै, पिय बिहीन धन मटके ॥

जग में जीवत ही को नातो।
मन बिछुरे तनु छार होइगो, कोउ न बात पुछातो॥
मैं मेरी कबहूँ नहिं कीजै, कीजै पंच सुहातो।
विषय असक्त रहत निस बासर, सुख सीरो दुख तातो॥
साँच झूँठ करि माया जोरी, आपुन रूखो खातो।
'सूरदास' कछु थिर नहिं रहई, जो आयो सो जातो॥

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी, फिर जहाज पै आवै।
कमल-नैन को छाँड़ि महातम और देव को ध्यावै॥
परम गंग को छाँड़ि पियासो, दुरमति कूप खनावै॥
जिन मधुकर अंबुज-रस चाख्यो, क्यों करील फल खावै।
'सूरदास' प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै॥

अपुनपौ आपुन ही बिसरयो।
जैसे स्वान काच-मन्दिर में, भ्रमि भ्रमि भूँकि परयो॥
हरि सौरभ मृग-नाभि बसत है, द्रुम-तृण सूँघि मरयो।
ज्यों सपने में रङ्क भूप भयो, तसि करि अरि पकरयो॥
ज्यों केहरि प्रतिबिंब देखिकै आपुन कूप परयो।
जैसे गज लखि फटिक-सिला में दसननि जाइ अरयो॥
मरकट मूठि छाँड़ि नहि दीन्ही घर-घर द्वार फिरयो।
'सूरदास' नलिनी को सुवटा कहि कौने जकरयो॥

छाँड़ि मन, हरि-विमुखन को संग ।
जिनके संग कुबुधि उपजत है, परत भजन में भंग ।
कहा भयो पयपान कराये, विख नहिं तजत भुअंग ॥
कागहिं कहा कपूर चुगाये, स्वान न्हवाये गंग ।
खर का कहा अरगजा-लेपन, मरकट भूखन अंग ॥
गज को कहा न्हवाये सरिता, बहुरि धरै खेहि छंग ।
पाहन-पतित बान नहिं भेदत, रीतो करत निखंग ॥
'सूरदास' खल कारी कामरि, चढ़त न दूजो रंग ॥

बाल-लीला

कर गहि पग-अँगुठा मुख मेलत ।
प्रभु पौढ़े पालने अकेले, हरषि हरषि अपने रँग खेलत ॥
सिव सोचत विधि बुद्धि बिचारत, वट बाढ्यो सागर जल मेलत ।
बिडरि चले घन प्रलय जानिकै, दिगपति दिग दंतीन सकेलत ॥
मुनि मन भीत भये भव कंपति, सेप सकुचि सहसौ फन पेलत ।
उन ब्रज-बासिन बात न जानी, समुझे 'सूर' सकट पगु पेलत ॥

कहाँ लौं बरनौं सुन्दरताइ ।
खेलत कुँअर कनक आँगन में, नैन निरखि छवि छाइ ॥
कुलहि लसत सिर स्याम सुभग अति, बहु बिधि सुरँग बनाइ ।
मानो नवघन ऊपर राजत, मघवा धनुष चढ़ाइ ॥
अति सुदेस मृदु हरत चिकुर मन मोहन मुख बगराइ ॥
मानो प्रगट कंज पर मंजुल, अलि अवली घिरि आइ ।

नील स्वेत पर पीत लाल मनि, लटकनि भाल रुनाइ।
सनि गुरु असुर देव गुरु मिलि मनु, भौम सहित समुदाइ॥
दूध-दंत-दुति कहि न जाति अति, अद्भुत इक उपमाइ।
किलकत हँसत दुरत प्रगटत मनु, घन में विद्यु छिपाइ॥
खंडित बचन देत पूरन सुख, अल्प जल्प जलपाइ।
घुटुरुन चलत रेनु तनु मंडित, 'सूरदास' बलि जाइ॥

जागिये ब्रजराज कुँअर, कमल कुसुम फूले।
कुमुद-वृन्द सकुचत भये, भृङ्गलता भूले॥
तमचुर खग रौर सुनहु, बोलत बनराई।
राँभति गौ खिरकन में, बछरा हित धाई॥
बिधु मलीन रवि प्रकास, गावत नर-नारी।
'सूर' स्याम प्रात उठौ, अंबुज कर धारी॥

खेलत स्याम ग्वालन संग।
सुबल, हलधर अरु सुदामा करत नाना रंग॥
हाथ तारी देत भाजत, सबै करि-करि होड़।
बरज हलधर—स्याम तुम जनि, चोट लगिहै गोड़॥
तब कह्यो—मैं दौरि जानत बहुत बल मो गात।
मोरी जोरी है सुदामा, हाथ मारे जात॥
बोलि तब उठे श्रीसुदामा, जाहु तारी मारि।
आगे हरि पाछे सुदामा, धर्‌यो स्याम हँकारि॥
जानिकै मैं रह्यो ठाढ़ो, छुवत कहा जु मोहि?
'सूर' हरि खीजत सखा सों, मनहिं कीनो कोहि॥

मैया, मोहिं दाऊ बहुत खिझायो।
मोसों कहत-मोल को लीनों, तोहि जसुमति कब जायो।
कहा कहौं एहि रिस के मारे, खेलनहौं नहिं जातु॥
पुनि पुनि कहत कौन है माता, को है तुमरो तातु॥
गोरे नंद जसोदा गोरी, तुम कत स्याम सरीर।
चुटुकी दै दै हँसत ग्वाल सब, सिखै देत बलबीर॥
तू मोही को मारन सीखी, दाउहि कबहुँ न खीझै।
मोहन को मुख रिस समेत लखि, यसुमति सुनि सुनि रीझै॥
सुनिहु कान्ह बलभद्र चबाई, जनमत ही को धूत।
'सूर' स्याम मो गोधन की सौं, हौं माता तू पूत॥

निगम स्वरूप देखि गोकुल हरि।
जाको दरस दूरि देवन कों, सो बाँध्या यसुदा ऊखल धरि॥
चुटुकिन दै दै ग्वाल नचावत, नाचत कान्ह बाल-लीला धरि।
जेहि डर भ्रमत पवन रवि ससि जल, सो क्यों डरै लकुटिया के डरि॥
छीर-समुद्र-सयन संतत जेहि, माँगत दूध पतोखी दै भरि।
'सूरदास' गुन के गाहक हरि, रसना गाइ गये अनेक तरि॥

कालिय-मर्दन

चरन-कमल वंदों जगदीस जे गोधन के सँग धाये।
जे पद-कमल धूरि लपटाने, कर गहिकै गोपी उर लाये॥

जे पद-कमल युधिष्ठिर पूजे, राजसूय पै चलि आये।
जे पद-कमल पितामह भीषम, भारत में देखन पाये॥
जे पद-कमल संभु चतुरानन, हृदय-कमल अन्तर राखे।
जे पद-कमल रमा-उर-भूषन, वेद भागवत मुनि भाखे॥
जे पद-कमल लोक-पावन त्रय, बलि राजा के पीठ धरे।
ते पद-कमल 'सूर' के स्वामी, काली फन पर निर्त करे।

उद्धव का ब्रज-गमन

हंस काग को सङ्ग भयो।
कहँ गोकुल कहँ गोप-गोपिका, विधि यह सङ्ग दयो॥
जैसे कंचन काँच संग, ज्यों चंदन संग कुगंधि।
जैसे खरी कपूर दोउ यक, यह भई ऐसी संधि॥
जल बिन मीन रहत कहुँ न्यारे, यह सो रीति चलावत।
जब ब्रज की बातें यहि कहियत, तबहिं तबहिं उचटावत॥
याको ज्ञान थापि ब्रज पठऊँ, और न याहि उपाय।
सुनहुँ 'सूर' याको बन पठऊँ, यहै बनैगो दाँव॥

ऊधो तुम यह निहचै जानो।
मन बच क्रम मैं तुमहिं पठावत, ब्रज को तुरत पलानो॥
पूरन ब्रह्म अलग अबिनासी, ताके तुम हो ज्ञाता।
रेख न रूप जाति कुल नाहीं, जाके नहिं पितु माता॥
यह मत दै गोपिन को आवहु, बिरह न मन में भाषति।
'सूर' तुरत तुम जाइ कहौ यह, ब्रह्म बिना नहिं आसति॥

भ्रमर-गीत

मधुप, तुम कहौ कहाँ ते आये हो ।
जानति हौं अनुमान आपने, तुम यदुनाथ पठाये हो ॥
वैसेहि बरन बसन तनु वैसे, वै भूषण सजि लाये हो ।
लै सरबसु सँग स्याम सिधारे, अब का पर पहिराये हो ॥
अहो मधुप, एकै मन सबको, सु तौ वहाँ लै छाये हो ।
अब यह कौन सयान बहुरि ब्रज, जा कारन उठि आये हो ॥
मधुबन की मानिनी मनोहर, तहीं जाहु जहँ भाये हो ।
'सूर' जहाँ लौं स्याम गात हौ, जानि भले करि पाये हो ॥

मधुकर, हमही क्यों समुझावत ।
बारंबार ज्ञान गीता ब्रज, अबलनि आगे गावत ॥
नँद-नंदन बिनु कपट-कथा ए, कत कहि रुचि उपजावत ।
स्रक चंदन जो अंग सुधारत, कहि कैसे सुख पावत ॥
देखि विचारत ही जिय अपने, नागर हो जु कहावत ।
मच सुमनन पर फिरी निरखि करि, काहे कमल बँधावत ॥
चरन कमल कर नयन कमल कर, नयन कमलवर भावत ।
'सूरदास' मनु अलि अनुरागी, केहि विधि हो बहरावत ॥

सुनहु गोपी हरि को सन्देस ।
करि समाधि अन्तर्गति ध्यावहु, यह उनको उपदेस ॥
वै अविगति अविनासी पूरन, सब घट रहे समाइ ।
निर्गुन ज्ञान बिनु मुक्ति नहीं है, वेद पुरानिनि गाइ ॥

सगुन रूप तजि निर्गुन ध्यावो, इक चित इक मन लाइ।
यह उपाव करि विरह तरौ तुम, मिलै ब्रह्म तब आइ॥
दुसह सँदेस सुनत माधौ को, गोपीजन बिलखानी।
'सूर' विरह की कौन चलावै, बूड़त मन बिन पानी॥

सुदामा-चरित

दूरिहिं तें देखे बलवीर।
अपने बाल-सुसखा सुदामा, मलिन बसन अरु छीन सरीर॥
पौंढ़े हुते प्रयंक परम रुचि, रुक्मिनि चमर डोलावत तीर।
उठि अकुलाइ अगमने लीने, मिलत नैन भरि आये नीर॥
तेहि आसन बैठारि स्यामघन, पूछी कुसल करौ मन धीर।
ल्याये हौ सु देहु किन हमको, अब कहा राखि दुरावत चीर॥
दरसन परस दृष्टि संभाषन, रही न उर अंतर कछु पीर।
'सूर' सुमति तन्दुल चबात ही, कर पकर्‌यो कमला भइ भीर॥

ऐसी प्रीति की बलि जाउँ।
सिंहासन तजि चले मिलन कों, सुनत सुदामा नाउँ॥
गुरु बांधव अरु विप्र जानिकै, हाथनि चरन पखारे।
अंक माल दै कुसल बूझिकै, अर्धासन बैठारे॥
अर्धांगी बूझति मोहन सों, कैसे हितू तुम्हारे।
दुर्बल दीन छीन देखति हौं, पाउँ कहाँ तें धारे॥
संदीपन के हम औ सुदामा, पढ़े एक चटसार।
'सूर' स्याम की कौन चलावै, भक्तनि कृपा अपार॥

कहो कैसे मिले स्याम सँघाती ।
कैसे गये सु कन्त कौन विधि, परसे वस्त्र कुचील कुजाती ॥
सुनि सुंदर प्रतिहार जनायो, हरि समीप रुक्मिनी जहाँ ती ।
उभै मुठी लीनो तन्दुल की, संपति संचित करी ही थाती ॥
'सूर' सु-दीनबन्धु करुनामय, करत बहुत जो श्री न रिसाती ॥

गोपाल बिना और मोहिं ऐसो कौन सँभारै ।
हँसत-हँसत हरि दौरि मिले सुन, उर तें उर नहिं टारै ॥
छीन अंग जीरन वस्त्र, दीन मुख निहारै ।
मम तन पथ-रज लागी, पीत पटसों झारै ॥
सुखद सेज आसन दीन्हों, सु हाथ-पाय पखारै ।
हरि हित हर गंग धरे, पद जल सिर ढारै ॥
कहि कहि गुरु-गेह-कथा, सकल दुख निवारै ।
न्याय निरख 'सूरदास' हरि पर सब वारै ॥

अष्टछाप

अष्टछाप-पदावली

कहा करौं बैकुंठहि जाय ।
जहँ नहिं नँद जहँ नही जसोदा, जहँ नहिं गोपी ग्वाल न गाय ॥
जहँ नहिं जल जमुना को निरमल, और नहीं कदमन की छाय ।
'परमानँद' प्रभु चतुर ग्वालिनी, ब्रजरज तजि मेरि जाय बलाय ॥

—परमानन्ददास ।

सन्तन का सिकरी सन काम ।
आवत जात पनहियाँ टूटीं, बिसरि गयो हरि-नाम ॥
जिनको मुख देखे दुख उपजत, तिनको करिबे परी सलाम ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर बिन, और सबै बेकाम ॥

तुम नीके दुहि जानत गैया ।
चलिये कुँवर रसिक-मन-मोहन, लगौं तिहारे पैया ॥
तुमहि जानि करि कनक दोहिनी, घर ते पठई मैया ।
निकटहि है यह खरिक हमारो, नागर लेहुँ बलैया ॥
देखियत परम सुदेस लरिकई, चित चुहँट्यो सुँदरैया ।
'कुँभनदास' प्रभु मानि लई रति, गिरि गोवरधन रैया ॥

—कुंभनदास ।

जसोदा कहा कहौं हौं बात ।
तुम्हरे सुत के करतब मोपै, कहत कहे नहिं जात ॥
भाजन फोरि ढोरि सब गोरस, लै माखन दधि खात ।
जो बरजौं तौ आँखि देखावै, रंचहु नाहिं सकात ॥

और अटपटी कहँ लौं बरनौं, छुवत पानि सों गात।
'दास चतुर्भुज' गिरिधर-गुन हौं, कहति कहति सकुचात॥

—चतुर्भुजदास।

परम दुसह श्रीकृष्ण-विरह-दुख व्याप्यो तिन में।
कोटि बरस लगि नरक भोग दुख भुगते छिन में॥
सुभग सरित के तीर धीर बल बीर गये तहँ।
कोमल मलय-समीर छबिन की महा भीर जहँ॥
कुसुम धूरि धूँधरी कुंज छबि पुंजनि छाई।
गुंजत मंजु मलिन्द बेनु जनु बजति सोहाई॥
इत महकति मालती चारु चम्पक चित चोरत।
उत घनसारु तुसारु मलय मन्दारु झकोरत॥
नव मर्कत मनि स्याम कनक मनिमय ब्रजबाला।
वृन्दावन गुन रीझि मनहु पहिराई माला॥

—नन्ददास।

प्रात समै उठि जसुमति जननी गिरिधर-सुत को उबटि न्हवावति।
करि शृंगार बसन भूपन सजि फूलन रचि रचि पाग बनावति॥
छुटे बन्द बागे अति सोभित बिच बिच चोब अरगजा लावति।
सूथन लाल फूँदना शोभित आजु कि छबि कछु कहति न आवति॥
विविध कुसुम की माला उर धरि श्रीकर मुरली बेत गहावति।
लै दरपन देखे श्रीमुख को 'गोविंद' प्रभु चरननि सिर नावति॥

—गोविन्दस्वामी।
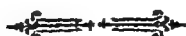
कविराजा बाँकीदास

नीति-मंजरी

(दोहे)

काज अहोणो ही करै, एह प्रकृत खळ अंग ।
रांमण पठियो राम दिस, कर सोवनो कुरंग ॥ १ ॥

सबळा खळ सूँ साँधियाँ, निबळ जाय खळ नास ।
मूँसो मेळ मँजार कर, बचियौ विपत विलास ॥ २ ॥

वैरी कंटक नाग विष, वीछू कैंवच वाघ ।
याँसूँ दूर रहंतड़ाँ, दूर रहै दुख दाघ ॥ ३ ॥

वैरी वैर न वीसरै, विना हिये ही वंक ।
राहु ग्रहै राकेस नूँ, नभ सिर मात्र निसंक ॥ ४ ॥

वारवधू ही हरण वित, नेह जणावै नैंण ।
यूँ सिर लेवा ऊचरै, वैरी मीठा वैण ॥ ५ ॥

वैरी रा मीठा वचन, फळ मीठा किंपाक ।
वे खाधाँ वे मानियाँ, हुवा कृतांत - खुराक ॥ ६ ॥

वाताँ वैर विसावणा, सैणाँ तोड़ै नेह ।
हासै विष पीणा हरष, आछा काम न एह ॥ ७ ॥

दोयण मारै दाव सूँ, नीत वात निरधार ।
पेख हिरण चीतो प्रकट, मूँसै पेख मँजार ॥ ८ ॥

पाँणी भड़ियौ पेख पग, दिल मत हरप दिवाल।
पैलाँ पाड़ण पड़त पग, इण री आहिज चाल ॥ ९ ॥
ऐ वक मूनी ऊजळा, मोठा - बोला मोर।
पूछौ सफरी पनग नूँ, क्रत ऊघड़ै कठोर ॥ १० ॥
मर सवळाँ आगै निवल, नीर धकै बानीर।
वाय धकै तृण जाय वच, भलौ नमण गुण भीर ॥ ११ ॥

गोस्वामी तुलसीदास

संत और असंत

वंदौं संत असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना ॥
बिछुरत एक प्रान हरि लेईं। मिलत एक दुख दारुन देईं ॥
उपजहिं एक संग जग माहीं। जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं ॥
सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू ॥
भल अनभल निज निज करतूती। लहत सुजस अपलोक बिभूती ॥
सुधा सुधाकर सुरसरि साधू। गरल अनल कलि-मल-सरि ब्याधू ॥
गुन अवगुन जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेहि सोई ॥

दो०—भलो भलाइहि पै लहै लहै निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरता गरल सराहिअ मीचु ॥

खल अघ-अगुन साधु गुन-गाहा। उभय-अपार उदधि अवगाहा ॥
तेहि तें कछु गुन-दोष बखाने। संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने ॥
भलेउ पोच सब बिधि उपजाए। गनि गुन-दोष बेद बिलगाए ॥
कहहिं बेद, इतिहास, पुराना। बिधि-प्रपंचु गुन-अवगुन-साना ॥
दुख सुख पाप पुन्य दिन राती। साधु असाधु सुजाति कुजाती ॥
दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिअ सजीवनु माहुरु मीचू ॥
माया ब्रह्म जीव जगदीसा। लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा ॥
कासी मग सुरसरि क्रमनासा। मरु मारव महिदेव गवासा ॥
सरग नरक अनुराग बिरागा। निगम अगम गुन-दोष-बिभागा ॥

दो०—जड़ चेतन गुण दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि-बिकार॥

अस बिवेक जब देइ बिधाता। तब तजि दोष गुनहि मनु राता॥
कालसुभाउ करम बरिआई। भलेउ प्रकृतिबस चुकइ भलाई॥
सो सुधारि हरिजन जिमि लेहीं। दलि दुख दोष बिमल जसु देहीं॥
खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू। मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू॥
लखि सुबेष जग-बंचक जेऊ। बेषप्रताप पूजिअहिं तेऊ॥
उघरहिं अंत न होई निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू॥
कियेहु कुबेषु साधु सनमानू। जिमि जग जामवंत हनुमानू॥
हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहु बेद बिदित सब काहू॥
गगन चढ़इ रज पवन-प्रसंगा। कीचहिं मिलइ नीच-जल-संगा॥
साधु असाधु सदन सुक सारी। सुमिरहिं रामु देहिं गनि गारी॥
धूम कुसंगति कारिख होई। लिखिअ पुरान मंजु मसि सोई॥
सोइ जल अनल अनिल-संघाता। होइ जलद जग-जीवनु-दाता॥

(रामचरितमानस—बालकांड)

संत असंत भेद बिलगाई। प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई॥
संतन के लच्छन सुनु भ्राता। अगिनित श्रुति पुरान बिख्याता॥
संत असंतन्ह कै असि करनी। जिमि कुठार चंदन आचरनी॥
काटै परसु मलय सुनु भाई। निजगुन देइ सुगंध बसाई॥

तातें सुर-सीसन्ह चढ़त जगबल्लभ श्रीखंड।
अनल दाहि पीटत घनहि परसुबदन यह दंड॥

बिषय अलंपट सील-गुनाकर। परदुख दुख सुख सुख देखें पर॥

सम अभूतरिपु बिमद बिरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी॥
कोमलचित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया॥
बिगत-काम मम नाम-परायन। सांति बिरत बिनती मुदितायन॥
सीतलता सरलता मइत्री। द्विज-पद-प्रीति धरम-जनयित्री॥
ये सब लच्छन बसहिं जासु उर। जानहु तात संत संतत फुर॥
सम दम नियम नीति नहि डोलहिं। परुष बचन कबहुँ नहिं बोलहिं॥

दो०—निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पदकंज।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुनमंदिर सुख-पुंज॥

सुनहु असंतन केर सुभाऊ। भूलेहु संगति करिअ न काऊ॥
तिन्हकर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहि घालै हरहाई॥
खलन्ह हृदय अतिताप बिसेखी। जरहिं सदा परसंपति देखी॥
जहँ कहुँ निंदा सुनहिं पराई। हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई॥
काम-क्रोध-मद-लोभ-परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन॥
बयरु अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सों॥
झूठइ लेना झूठइ देना। झूठइ भोजन झूठ चबेना॥
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा। खाहिं महा अहि हृदय कठोरा॥

दो०—परद्रोही पर-दार-रत परधन पर-अपवाद।
ते नर पाँवर पापमय देह धरे मनुजाद॥

लोभइ ओढ़न लोभइ डासन। सिस्नोदरपर जमपुर-त्रासन॥
काहू कै जौं सुनहिं बड़ाई। स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई॥
जब काहू कै देखहिं बिपती। सुखी भये मानहुँ जगनृपती॥

स्वारथ-रत परिवार-विरोधी। लंपट काम लोभ अति क्रोधी॥
मातु पिता गुरु विप्र न मानहिं। आपु गए अरु घालहिं आनहिं॥
करहिं मोहवस द्रोह परावा। संत-संग हरिकथा न भावा॥
अवगुन-सिंधु मंदमति कामी। वेदविदूषक पर - धन - स्वामी॥
विप्रद्रोह सुरद्रोह विसेषा। दंभ कपट जिय धरे सुवेषा॥

दो०—ऐसे अधम मनुज खल कृतजुग त्रेता नाहिं।
द्वापर कछुक वृन्द बहु होइहहिं कलिजुग माहिं॥

परहित सरिस धर्म नहिं भाई। परपीड़ा सम नहिं अधमाई॥
निरनय सकल पुरान वेद कर। कहेउँ तात जानहिं कोविद नर॥
नर-सरीर धरि जे परपीरा। करहिं ते सहहि महा-भव-भीरा॥
करहिं मोहवस नर अघ नाना। स्वारथरत परलोक नसाना॥
कालरूप तिन्ह कहुँ मैं भ्राता। सुभ अरु असुभ करम-फल दाता॥
अस विचारि जे परम सयाने। भजहिं मोहिं संसृति दुख जाने॥
त्यागहिं कर्म सुभासुभ-दायक। भजहिं मोहि सुर-नर-मुनि-नायक॥
संत असंतन्ह के गुन भाखे। ते न परहि भव जिन्ह लखि राखे॥

(उत्तरकांड)

लक्ष्मण-परशुराम-संवाद

तेहि अवसर सुनि सिव-धनु-भंगा। आए भृगु-कुल-कमल-पतंगा॥
देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने॥
गौर सरीर भूति भलि भ्राजा। भाल विसाल त्रिपुंड विराजा॥
सीस जटा ससिवदन सुहावा। रिसिवस कछुक अरुन होइ आवा॥

भृकुटी कुटिल नयन रिस राते। सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते॥
वृषभकंध उर बाहु बिसाला। चारु जनेउ माल मृगछाला॥
कटि मुनिबसन तून दुइ बाँधे। धनु सर कर कुठार कल काँधे॥

दो०—संत बेष करनी कठिन बरनि न जाइ सरूप।
धरि मुनितनु जनु बीर रसु आयेउ जहँ सब भूप॥

देखत भृगुपति-बेषु कराला। उठे सकल भय-बिकल भुआला॥
पितुसमेत कहि निज निज नामा। लगे करन सब दंडप्रनामा॥
जेहि सुभाय चितवहिं हितु जानी। सो जाने जनु आइ खुटानी॥
जनक बहोरि आइ सिरु नावा। सीय बोलाइ प्रनाम करावा॥
आसिष दीन्हि सखी हरषानी। निज समाज लै गईं सयानी॥
बिस्वामित्र मिले पुनि आई। पदसरोज मेले दोउ भाई॥
रामु लषनु दसरथ के ढोटा। देखि असीस दीन्ह भल जोटा॥
रामहिं चितै रहे भरि लोचन। रूप अपार मार-मद-मोचन॥

दो०—बहुरि बिलोकि बिदेह सन कहहु काह अति भीर।
पूँछत जानि अजान जिमि ब्यापेउ कोपु सरीर॥

समाचार कहि जनक सुनाए। जेहि कारन महीप सब आए॥
सुनत बचन फिरि अनत निहारे। देखे चापखंड महि डारे॥
अति रिस बोले बचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष केइ तोरा॥
बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू। उलटौं महि जहँ लगि तव राजू॥
अति डर उतर देत नृप नाहीं। कुटिल भूप हरषे मन माहीं॥
सुर मुनि नाग नगर-नर-नारी। सोचहिं सकल त्रास उर भारी॥
मन पछिताति सीय-महतारी। बिधि अब सँवरी बात बिगारी॥

भृगुपति कर सुभाउ सुनि सीता । अरध निमेषु कलप-सम बीता ॥

दो०—समय बिलोके लोग सब जानि जानकी भीरु ।
हृदय न हरष बिषाद कछु बोले श्रीरघुबीरु ॥

नाथ संभु-धनु-भंजनिहारा । होइहि कोउ एक दास तुम्हारा ॥
आयसु काह कहिअ किन मोही । सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही ॥
सेवक सो जो करै सेवकाई । अरिकरनी करि करिअ लराई ॥
सुनहु राम जेहि सिव-धनु तोरा । सहस-बाहु-सम सो रिपु मोरा ॥
सो बिलगाउ बिहाइ समाजा । नतु मारे जैहैं सब राजा ॥
सुनि मुनिबचन लषन मुसुकाने । बोले परसुधरहि अपमाने ॥
बहु धनुही तोरी लरिकाईं । कबहुँ न असि रिस कीन्ह गोसाईं ॥
एहि धनु पर ममता केहि हेतू । सुन रिसाइ कह भृगु-कुल-केतु ॥

दो०—रे नृपबालक कालबस बोलत तोहि न सँभार ।
धनुही सम त्रिपुरारि-धनु बिदित सकल संसार ॥

लषन कहा हँसि हमरे जाना । सुनहु देव सब धनुष समाना ॥
का छति लाभु जून धनु तोरे । देखा राम नयन के भोरे ॥
छुअत टूट रघुपतिहु न दोषू । मुनि बिनु काज करिअ कत रोषू ॥
बोले चितै परसु की ओरा । रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा ॥
बालक बोलि बधौं नहिं तोही । केवल मुनि जड़ जानहि मोही ॥
बाल-ब्रह्मचारी अति कोही । बिस्व-बिदित छत्रिय-कुल-द्रोही ॥
भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही । बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही ॥
सहस - बाहु - भुज - छेदनिहारा । परसु बिलोकु महीपकुमारा ॥

दो०-मातुपितहि जनि सोचबस करसि महीपकिसोर ।
गरभन के अरभक-दलन परसु मोर अति घोर ॥
बिहँसि लषन बोले मृदु बानी । अहो मुनीस महाभट मानी ॥
पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू । चहत उड़ावन फूँकि पहारू ॥
इहाँ कुम्हड़बतिया कोउ नाहीं । जे तरजनी देखि मरि जाहीं ॥
देखि कुठार सरासन बाना । मैं कछु कहेउँ सहित अभिमाना ॥
भृगुकुल समुझि जनेउ बिलोकी । जो कुछ कहहु सहौं रिस रोकी ॥
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई । हमरे कुल इन पर न सुराई ॥
बधे पाप अपकीरति हारे । मारतहू पा परिश्र तुम्हारे ॥
कोटि-कुलिस-सम बचन तुम्हारा । व्यर्थ धरउ धनु बान कुठारा ॥

दो०-जो बिलोक अनुचित कहउँ छमहु महामुनि धीर ।
सुनि सरोष भृगुबंस-मनि बोले गिरा गँभीर ॥
कौसिक सुनहु मंद यह बालक । कुटिल कालबस निज-कुल-घालक ॥
भानु - बंस - राकेस - कलंकू । निपट निरंकुस निठुर निसंकू ॥
काल - कवलु होइहि छन माहीं । कहौं पुकारि खोरि मोहि नाहीं ॥
तुम्ह हटकहु जौ चहहु उबारा । कहि प्रतापु बलु रोषु हमारा ॥
लषन कहेउ मुनि सुजस तुम्हारा । तुम्हहिं अछत को बरनै पारा ॥
अपने मुँह तुम आपनि करनी । बार अनेक भाँति बहु बरनी ॥
नहि संतोष तौ पुनि कछु कहहू । जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू ॥
बीरब्रती तुम्ह धीर अछोभा । गारी देत न पावहु सोभा ॥
दो०-सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहि आपु ।
विद्यमान रिपु पाइ रन कायर करहिं प्रलापु ॥

तुम्ह तौ कालु हाँक जनु लावा। वार वार मोहिं लागि वोलावा॥
सुनत लषन के वचन कठोरा। परसु सुधारि धरेउ कर घोरा॥
अव जनि देइ दोष मोहि लोगू। कटुवादी वालक वधजोगू॥
वाल विलोकि वहुत मैं वाँचा। अव यहु मरनिहार भा साँचा॥
कौसिक कहा छमिअ अपराधू। वाल-दोष-गुन गनहिं न साधू॥
कर कुठार मैं अकरुन कोही। आगे अपराधी गुरुद्रोही॥
उतर देत छाँड़ौं विनु मारे। केवल कौसिक सील तुम्हारे॥
न तु एहि काटि कुठार कठोरे। गुरुहिं उरिन होतेउँ श्रम थोरे॥

दो०—गाधिसूनु कह हृदय हँसि मुनिहि हरिअरै सूझ।
अजगव खंडेउ ऊख जिमि अजहुँ न वूझ अवूझ॥

कहेउ लषन मुनि सील तुम्हारा। को नहिं जान विदित संसारा॥
माता-पितहि उरिन भए नीके। गुररिन रहा सोच वड़ जी के॥
सो जनु हमरेहि माथे काढ़ा। दिन चलि गयेउ व्याज वहु वाढ़ा॥
अव आनिअ व्यवहरिआ वोली। तुरत देउँ मैं थैली खोली॥
सुनि कटुवचन कुठार सुधारा। हाय हाय सव सभा पुकारा॥
भृगुवर परसु देखावहु मोही। विप्र विचारि वचौं नृपद्रोही॥
मिले न कवहुँ सुभट रन गाढ़े। द्विज देवता घरहिं के वाढ़े॥
अनुचित कहि सव लोग पुकारे। रघुपति सैनहिं लषन निवारे॥

दो०—लषन-उतर आहुति सरिस भृगु-वर-कोप कृसानु।
वढ़त देखि जल-सम वचन वोले रघु-कुल-भानु॥

नाथ करहु वालक पर छोहू। सूध दूधमुख करिअ न कोहू॥
जौं पै प्रभुप्रभाउ कछु जाना। तौ कि वरावरि करै अयाना॥

जौं लरिका कछु अचगरि करहीं । गुर पितु मातु मोद मन भरहीं ॥
करिअ कृपा सिसु सेवक जानी । तुम्ह सम सील धीर मुनि ग्यानी ॥
राम-बचन सुनि कछुक जुड़ाने । कहि कछु-लषन बहुरि मुसुकाने ॥
हँसत देखि नखसिख रिस व्यापी । राम तोर भ्राता बड़ पापी ॥
गौर सरीर स्याम मन माहीं । काल-कूट-मुख पयमुख नाहीं ॥
सहज टेढ़ अनुहरै न तोही । नीच मीचसम देख न मोही ॥

दो०—लषन कहेउ हँसि सुनहु मुनि क्रोध पाप कर मूल ।
जेहि बस जन अनुचित करहिं चरहि बिस्व-प्रतिकूल ॥

मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया । परिहरि कोप करिअ अब दाया ॥
टूट चाप नहिं जुरिहि रिसाने । बैठिअ होइहि पाय पिराने ॥
जौं अति प्रिय तौ करिअ उपाई । जोरिय कोउ बड़ गुनी बोलाई ॥
बोलत लषनहिं जनक डेराहीं । मष्ट करहु अनुचित भल नाहीं ॥
थरथर काँपहिं पुर-नर-नारी । छोट कुमार खोट बड़ भारी ॥
भृगुपति सुनि सुनि निर्भय बानी । रिस तन जरै होइ बलहानी ॥
बोले रामहिं देइ निहोरा । बचौं बिचारि बंधु लघु तोरा ॥
मन मलीन तनु सुंदर कैसे । विष-रस-भरा कनकघट जैसे ॥

दो०—सुनि लछिमन बिहँसे बहुरि नयन तरेरे राम ।
गुरु-समीप गवने सकुचि परिहरि बानी बाम ॥

अति बिनीत मृदु सीतल बानी । बोले राम जोर जुग पानी ॥
सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना । बालक-बचन करिअ नहि काना ॥
बररै बालकु एकु सुभाऊ । इन्हहिं न संत बिदूषहिं काऊ ॥
तेहि नाहीं कछु काज बिगारा । अपराधी मैं नाथ तुम्हारा ॥

कृपा, कोप, वध बंध गोसाईं। मो पर करिअ दास की नाईं॥
कहिअ वेगि जेहि विध रिस जाई। मुनिनायक सोइ करौं उपाई॥
कह मुनि राम जाय रिस कैसे। अजहुँ अनुज तव चितव अनैसे॥
एहिके कंठ कुठार न दीन्हा। तो मैं काह कोप करि कीन्हा॥

दो०—गर्भ स्रवहिं अवनिप-रवँनि सुनि कुठारगति घोर।
परसु अछत देखौं जिअत वैरी भूप किसोर॥

वहै न हाथ दहै रिस छाती। भा कुठार कुंठित नृपघाती॥
भयेउ वाम विधि फिरेउ सुभाऊ। मोरे हृदय कृपा कसि काऊ॥
आजु दैव दुख दुसह सहावा। सुनि सौमित्रि वहुरि सिरु नावा॥
वाउ कृपा मूरति अनुकूला। वोलत वचन झरत जनु फूला॥
जौं पै कृपा जरहिं मुनि गाता। क्रोध भए तन राखु विधाता॥
देखु जनक हठि वालक एहू। कीन्ह चहत जड़ जमपुर गेहू॥
वेगि करहु किन आँखिन ओटा। देखत छोट खोट नृपढोटा॥
विहँसे लषन कहा मुनि पाहीं। मूँदें आँखि कतहुँ कोउ नाहीं॥

दो०—परसुराम तव राम प्रति वोले उर अति क्रोध।
संभु-सरासन तोरि सठ करसि हमार प्रवोध॥

वंधु कहै कटु संमत तोरे। तू छल विनय करसि कर जोरे॥
करु परितोष मोर संग्रामा। नाहिं त छाँड़ु कहाउव रामा॥
छल तजि करहि समर सिवद्रोही। वन्धुसहित न त मारौं तोही॥
भृगुपति वकहिं कुठार उठाए। मन मुसुकाहिं राम सिर नाए॥
गुनह लषन कर हमपर रोषू। कतहुँ सुधाइहु तें वड़ दोषू॥
टेढ़ जानि वंदै सव काहू। वक्र चंद्रमहि ग्रसै न राहू॥

राम कहेउ रिस तजिअ मुनीसा। कर कुठार आगे यह सीसा॥
जेहि रिस जाइ करिअ सोइ स्वामी। मोहि जानिअ आपन अनुगामी॥

दो०—प्रभु सेवकहि समर कस तजहु विप्रवर रोसु।
बेष बिलोकि कहेसि कछु बालकहू नहि दोसु॥

देखि कुठार-बान-धनु-धारी। भइ लरिकहि रिस बीरु बिचारी॥
नाम जान पै तुम्हहिं न चीन्हा। बंससुभाव उतर तेहि दीन्हा॥
जौं तुम्ह अवतेहु मुनि की नाईं। पदरज सिर सिसु धरत गोसाईं॥
छमहू चूक अनजानत केरी। चहिअ बिप्रउर कृपा घनेरी॥
हमहिं तुम्हहिं सरबरि कस नाथा। कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा॥
राम मात्र लघु नाम हमारा। परसु सहित बड़ नाम तुम्हारा॥
देव एकगुन धनुष हमारे। नवगुन परम पुनीत तुम्हारे॥
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे। छमहु बिप्र अपराध हमारे॥

दो०—बार बार मुनि बिप्रवर कहा राम सन राम।
बोले भृगुपति सरुष होइ तहूँ बंधुसम बाम॥

निपटहि द्विज करि जानहि मोही। मै जस बिप्र सुनावौं तोही॥
चाप स्रुवा सर आहुति जानू। कोप मोर अतिघोर कृसानू॥
समिधि सेन चतुरंग सुहाई। महामहीप भए पसु आई॥
मैं यह परसु काटि बलि दीन्हे। समरजाय जग कोटिक कीन्हे॥
मोर प्रभाव बिदित नहिं तोरे। बोलसि निदरि बिप्र के भोरे॥
भंजेउ चाप दाप बड़ बाढ़ा। अहमिति मनहुँ जीति जग ठाढ़ा॥
राम कहा मुनि कहहु बिचारी। रिस अति बड़ि लघु चूक हमारी॥
छुवतहि टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करौं अभिमाना॥

दो०—जौं हम निदरहिं विप्र वदि सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तो अस को जग सुभट जेहि भयवस नावहि माथ॥

देव दनुज भूपति भट नाना। समबल अधिक होउ बलवाना॥
जो रन हमहिं प्रचारै कोऊ। लरहिं सुखेन काल किन होऊ॥
छत्रिय-तनु धरि समर सकाना। कुलकलंक तेहि पाँवर जाना॥
कहौं सुभाव न कुलहि प्रसंसी। कालहु डरहिं न रन रघुवंसी॥
विप्रवंस कै असि प्रभुताई। अभय होइ जो तुम्हहिं डेराई॥
सुनि मृदु वचन गूढ़ रघुपति के। उघरे पटल परसु-धर-मति के॥
राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु मिटै मोर संदेहू॥
देत चाप आपुहि चलि गयेऊ। परसुराम मन विसमय भयेऊ॥

दो०—जाना राम-प्रभाउ तब पुलक प्रफुल्लित गात।
जारि पानि बोले वचन हृदय न प्रेम समात॥

जय रघुवंस-वनज-बन-भानू। गहन-दनुज-कुल-दहन कृसानू॥
जय सुर-विप्र-धेनु-हितकारी। जय मद-मोह-कोह-भ्रम-हारी॥
विनयसील करुना-गुन-सागर। जयति वचन रचना-अतिनागर॥
सेवक-सुखद सुभग सब अंगा। जय सरीर-छवि कोटि-अनंगा॥
करौं काह मुख एक प्रसंसा। जय महेस-मन-मानस-हंसा॥
अनुचित वचन कहेउँ अग्याता। छमहु छमामंदिर दोउ भ्राता॥
कहि जय जय जय रघु-कुल-केतू। भृगुपति गए वनहिं तप हेतू॥

प्रभाती

भोर भयो जागहु, रघुनंदन !
गत-व्यलीक, भगतनि-उर-चंदन ॥
ससि करहीन, छीनदुति तारे।
तमचुर मुखर, सुनहु मेरे प्यारे ! ॥
बिकसित कंज, कुमुद बिलखाने।
लै पराग रस मधुप उड़ाने ॥
अनुजसखा सब बोलनि आए।
बंदिन्ह अति पुनीत गुन गाए ॥
मनभावतो कलेऊ कीजै।
'तुलसिदास' कहँ जूँठनि दीजै ॥

प्रात भयो तात, बलि, मातु, बिधु बदन पर
मदन वारौं कोटि, उठौ प्रानप्यारे ! ।
सूत मागध बंदि बदत बिरुदावली,
द्वार सिसु-अनुज प्रियतम तिहारे।
कोक गतसोक अवलोकि ससि छीनछवि,
अरुनमय गगन राजत रुचि-तारे।
मनहुँ रबिबाल-मृगराज तमनिकर-करि
दलित, अति ललित मनिगन बिथारे।
सुनहु तमचुर मुखर, कीर कलहंस पिक
केकि रव कलित, बोलत बिहंग बारे ॥

मनहुँ मुनिवृंद, रघुवंसमनि ! रावरे
गुनत गुन आस्रमनि सपरिवारे ।
सरनि विकसित कंजपुंज मकरंद वर,
मंजुतर मधुर मधुकर गुंजारे।
मनहुँ प्रभुजन्म सुनि चैन अमरावती,
इन्दिरानंद मंदिर सँवारे।
प्रेम-सम्मिलित वर वचन-रचना अकनि
राम राजीव - लोचन उघारे।
दास 'तुलसी' मुदित,जननि करैं आरती,
सहज सुंदर अजिर पाँव धारे ॥

जागिए कृपानिधान जानराय रामचंद्र !
जननी कहै बारबार भोर भयो प्यारे।
राजिवलोचन विसाल, प्रीति-वापिका मराल,
ललित कमल-बदन ऊपर मदन कोटि वारे ॥
अरुन उदित, विगत सर्वरी, ससांक किरनिहीन,
दीन दीपजोति, मलिन-दुति समूह तारे ।
मनहुँ ज्ञान घन प्रकास, बीते सब भव-विलास
आसत्रास-तिमिर तोप-तरनि-तेज जारे ॥
बोलत खगनिकर मुखर मुधुर-करि प्रतीत
सुनहु स्रवन, प्रानजीवन धन, मेरे तुम बारे।
मनहुँ वेद बंदी मुनिवृंद सूत मागधादि विरुद
बदत 'जय जय जय जयति कैटभारे' ॥

बिकसित कमलावली, चले प्रपुंज चंचरीक
गुंजत कल कोमल धुनि त्यागि कंज न्यारे।
जनु बिराग पाइ सकल-सोक-कूप-गृह बिहाइ
भृत्य प्रेममत्त फिरत गुनत गुन तिहारे॥
सुनत बचन प्रिय रसाल जागे अतिसय दयाल,
भागे जंजाल बिपुल, दुख-कदंब दारे।
'तुलसिदास' अति अनंद, देखिकै मुखारबिंद,
छूटै भ्रमफंद परम मंद द्वंद भारे॥

बोलत अवनिप-कुमार ठाढ़े नृप-भवन-द्वार,
रूप-सील-गुन उदार जागहु मेरे प्यारे।
बिलखित कुमुदिनि, चकोर, चक्रवाक हरष भोर,
करत सोर तमचुर खग, गुंजत अलि न्यारे॥
रुचिर मधुर भोजन करि, भूषन सजि सकल अंग,
संग अनुज बालक सब बिबिध बिधि सँवारे।
करतल गहि ललित चाप भंजन रिपु-निकर-दाप,
कटितट पटपीत, तून सायक अनियारे॥
उपबन मृगया-बिहार-कारन गवने कृपाल,
जननी मुख निरखि पुन्यपुंज निज बिचारे।
'तुलसिदास' संग लीजै, जानि दीन अभय कीजै,
दीजै मति बिमल गावै चरित बर तिहारे॥

गंगा-पार-गमन

सवैया

नाम अजामिल से खलकोटि अपार नदी भव बूड़त काढ़े।
जे सुमिरे गिरि-मेरु सिला-कन, होत अजाखुर वारिधि बाढ़े॥
'तुलसी' जेहिके पद्पंकज तें प्रगटी तटिनी जो हरै अघ गाढ़े।
सो प्रभु स्वै सरिता तरिवे कहँ माँगत नाव करारे ह्वै ठाढ़े॥

एहि घाट तें थोरिक दूर अहै कटि लौं जल-थाह देखाइहौं जू।
परसे पगधूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समझाइहौं जू ?॥
'तुलसी' अवलंब न और कछू, लरिका केहि भाँति जिआइहौं जू ?।
बरु मारिए मोहिं, बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू॥

रावरे दोष न पायँन को, पगधूरि को भूरि प्रभाउ महा है।
पाहन तें बन-बाहन काठ को कोमल है, जल खाइ रहा है॥
पावन पायँ पखारिकै नाव चढ़ाइहौं, आयसु होत कहा है ?।
'तुलसी' सुनि केवट के वर वैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है॥

घनाक्षरी

पात भरी सहरी, सकल सुत बारे बारे,
केवट की जाति कछू वेद ना पढ़ाइहौं।
सब परिवार मेरो याही लागि, राजा जू !
हौं दीन वित्तहीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं ?॥

गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरो,
प्रभु सों निषाद ह्वैके वाद न बढ़ाइहौं।
'तुलसी' के ईस राम रावरे सों साँची कहौं,
विना पग धोए नाथ नाव न चढ़ाइहौं॥

जिनका पुनीत बारि धारे सिर पै पुरारि,
त्रिपथगामिनि-जसु वेद कहै गाइकै।
जिनको जोगीन्द्र मुनिवृन्द देव देह भरि,
करत विराग जप जोग मन लाइकै।
'तुलसी' जिनकी धूरि परसि अहल्या तरी,
गौतम सिधारे गृह गौनो सो लिवाइकै॥
तेई पायँ पाईकै चढ़ाइ नाव धोए बिनु,
ख्वैहौं न पठावनी कै ह्वैहौं न हँसाइकै॥

प्रभुरुख पाइकै बोलाइ बाल घरिनिहिं,
वंदिकै चरन चहूँ दिसि बैठे घेरि घेरि।
छोटो-सो कठौता भरि आनि पानी गंगाजू को,
धोइ पायँ पीयत पुनीत वारि फेरि फेरि॥
'तुलसी' सराहैं ताको भाग सानुराग सुर,
वरषैं सुमन जय जय कहैं टेरि टेरि।
बिवुध-सनेह-सानी बानी असयानी सुनी,
हँसे राघौ जानकी लषन तन हेरि हेरि॥

राम का वन-गमन

दो०—द्वार भीर सेवक सचिव कहहिं उदित रवि देखि ।
जागे अजहुँ न अवध-पति कारन कवन विसेखि ॥

पिछले पहर भूपु नित जागा । आजु हमहिं बड़ अचरजु लागा ॥
जाहु सुमंत्र जगावहु जाई । कीजिअ काज रजायसु पाई ॥
गये सुमंत्र तब राउर पाहीं । देखि भयावन जात डेराहीं ॥
धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा । मानहुँ विपति-विषाद-बसेरा ॥
पूँछे कोउ न ऊतरु देई । गए जेहि भवन भूप कैकेई ॥
कहि जय-जीव बैठि सिर नाई । देखि भूप-गति गयेउ सुखाई ॥
सोच-बिकल बिबरन महि परेऊ । मानहुँ कमल-मूलु परिहरेऊ ॥
सचिव सभीत सकइ नहिं पूँछी । बोली असुभ-भरी सुभ-छूँछी ॥

दो०—परी न राजहि नींद निसि हेतु जान जगदीसु ।
रामु रामु रटि भोरु किय कहेउ न मरमु महीसु ॥

आनहु रामहि वेगि बुलाई । समाचार तब पूँछेहु आई ॥
चलेउ सुमंत्र राय-रुख जानी । लखी कुचालि कीन्ह कछु रानी ॥
सोच-विकल मग परै न पाऊ । रामहि बोलि कहिहिं का राऊ ॥
उर धरि धीरज गयेउ दुआरे । पूँछहि सकल देखि मनुमारे ॥
समाधान सो करि सबही का । गयेउ जहाँ दिन-कर-कुल-टीका ॥
राम सुमंत्रहि आवत देखा । आदरु कीन्ह पितासम लेखा ॥
निरखि बदनु कहि भूप-रजाई । रघुकुल-दीपहि चलेउ लिवाई ॥
राम कुभाँति सचिव सँग जाहीं । देखि लोग जहँ-तहँ बिलखाहीं ॥

दो०—जाइ देखि रघु-बंस-मनि नरपति निपट कुसाजु ।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि मनहु बृद्ध गजराजु ॥

सूखहिं अधर जरै सब अंगू । मनहुँ दीन मनि-हीन-भुअंगू ॥
सरुख समीप देखि कैकेई । मानहुँ मीचु घरी गनि लेई ॥
करुनामय मृदु राम-सुभाऊ । प्रथम दीख दुख सुना न काऊ ॥
तदपि धीर धरि समउ बिचारी । पूछी मधुर-बचन महतारी ॥
मोहि कहु, मात, तात दुख-कारन । करिअ जतन जेहि होइ निवारन ॥
सुनहु राम सब कारन एहू । राजहि तुम्हपर बहुत सनेहू ॥
देन कहेउ मोहिं दुइ बरदाना । माँगेउँ जो कछु मोहि सुहाना ॥
सो सुनि भयउ भूपउर सोचू । छाँड़ि न सकहि तुम्हार सँकोचू ॥

दो०—सुत-सनेह इत बचन उत संकट परेउ नरेसु ।
सकहु न आयसु धरहु सिर मेटहु कठिन कलेसु ॥

निधरक बैठि कहै कटु-बानी । सुनत कठिनता अति अकुलानी ॥
जीभ कमान, बचन सर नाना । मनहुँ महिप मृदु-लच्छ-समाना ॥
जनु कटोरपनु धरे सरीरू । सिखै धनुष-विद्या बर बीरू ॥
सब प्रसंगु रघुपतिहि सुनाई । बैठि मनहुँ तनु धरि निठुराई ॥
मन मुसकाइ भानु-कुल-भानू । रामु सहज-आनन्द-निधानू ॥
बोले बचन बिगत सब दूषन । मृदु मंजुल जनु बाग-बिभूषन ॥
सुनु जननी सोइ सुत बड़-भागी । जो पितु-मातु-बचन-अनुरागी ॥
तनय मातु–पितु–तोषनिहारा । दुरलभ जननि सकल संसारा ॥

दो०—मुनिगन मिलनु बिसेषि बन सबहि भाँति हित मोर ।
तेहि महँ पितु-आयसु बहुरि संमत जननी तोर ॥

भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहिं सनमुख आजू॥
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ़-समाजा॥
सेवहिं अरँडु कलपतरु त्यागी। परिहरि अमिय लेहिं बिषु माँगी॥
तेउ न पाइ अस समउ चुकाहीं। देखु बिचारि मातु मन माहीं॥
अम्ब एकु दुख मोहि बिसेखी। निपट बिकल नरनायकु देखी॥
थोरिहि बात पितहि दुख भारी। होति प्रतीति न मोहि महतारी॥
राउ धीर गुन-उदधि अगाधू। भा मोहितें कछु बड़ अपराधू॥
तातें मोहि न कहत कछु राऊ। मोरि सपथ तोहि कहु सतिभाऊ॥

दो०—सहज सरल रघुबर-बचन कुमति कुटिल करि जान।
चलइ जोंक जिमि बक्र गति जद्यपि सलिल समान॥

रहसी रानि रामरुख पाई। बोली कपटसनेह जनाई॥
सपथ तुम्हार भरत कै आना। हेतु न दूसर मैं कछु जाना॥
तुम्ह अपराधु जोगु नहिं ताता। जननी-जनक-बन्धु-सुखदाता॥
राम सत्य सबु जो कुछ कहहू। तुम पितु-मातु-बचन-रत अहहू॥
पितहिं बुझाई कहहू, बलि सोई। चौथेपन जेहि अजसु न होई॥
तुम्ह सम सुअन सुकृति जेहि दीन्हे। उचित न तासु निरादरु कीन्हे॥
लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे। मगह गयादिक तीरथ जैसे॥
रामहिं मातुबचन सब भाए। जिमि सुरसरिगत सलिल सुहाए॥

दो०—गइ मुरुछा रामहिं सुमिरि नृप फिरि करवट लीन्ह।
सचिव राम-आगमन कहि बिनय समयसम कीन्ह॥

अवनिप अकनि रामु पगु धारे। धरि धीरजु तब नयन उघारे॥
सचिव सँभारि राउ बैठारे। चरनु परत नृप रामु निहारे॥

लिये सनेह-विकल उर लाई। गइ मनि मनहुँ फनिक फिरि पाई॥
रामहि चितै रहेउ नरनाहू। चला विलोचन वारिप्रवाहू॥
सोकविवस कछु कहै न पारा। हृदय लगावत बारहिं वारा॥
विधिहि मनाव राउ मन माहीं। जेहि रघुनाथ न कानन जाहीं॥
सुमिरि महेसहि कहै निहोरी। बिनती सुनहु सदा सिव मोरी॥
आसुतोष तुम अवढर दानी। आरति हरहु दीन जनु जानी॥

दो०—तुम्ह प्रेरक सबके हृदय सो मति रामहिं देहु।
वचनु मोर तजि रहहिं घर परिहरि सीलु सनेहु॥

अजसु होउ जग सुजसु नसाऊँ। नरक परउँ बरु सुरपुर जाऊँ॥
सब दुख दुसह सहावउ मोहीं। लोचन-ओट रामु जनि होहीं॥
अस मन गुनै राउ नहिं बोला। पीपर-पात-सरिस मनु डोला॥
रघुपति पितहि प्रेम-बस जानी। पुनि कछु कहिहि मातु अनुमानी॥
देस काल अवसर अनुसारी। बोले बचन विनीत बिचारी॥
तात कहौं कछु करौं ढिठाई। अनुचित छमब जानि लरिकाई॥
अति-लघु-बात लागि दुख पावा। काहु न मोहि कहि प्रथम जनावा॥
देखि गोसाइँहिं पूछेउँ माता। सुनि प्रसंगु भये सीतल गाता॥

दो०—मंगल-समय सनेहबस सोच परिहरिअ तात।
आयसु देइअ हरषि हिय कहि पुलके प्रभुगात॥

धन्य जनमु जगतीतल तासू। पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू॥
चारि पदारथ करतल ताके। प्रिय पितुमातु प्रानसम जाके॥
आयसु पालि जनम-फलु पाई। ऐहौं बेगिहि होउ रजाई॥
बिदा मातु सन आवौं माँगी। चलिहौं बनहिं बहुरि पग लागी॥

अस कहि राम गवनु तब कीन्हा। भूप सोकवस उतरु न दीन्हा॥
नगर व्यापि गई बात सुतीछी। छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी॥
सुनि भए विकल सकल नर नारी। बेलि बिटप जिमि देखि दवारी॥
जो जहँ सुनइ धुनइ सिर सोई। बड़ विषादु नहिं धीरज होई॥

दो०—मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं सोक न हृदय समाइ।
मनहुँ करुन-रस-कटकई उतरी अवध बजाइ॥

मिलेहि माँझ बिधि बात बिगारी। जहँ तहँ देहिं कैकइहि गारी॥
एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ। छाइ भवन पर पावकु धरेऊ॥
निजकर नयन काढ़ि चह दीखा। डारि सुधा विषु चाहति चीखा॥
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी। भइ रघु-बंस-बेनु-बन आगी॥
पालव बैठि पेड़ु एहि काटा। सुख महुँ सोक ठाटु धरि ठाटा॥
सदा रामु एहि प्रानसमाना। कारन कवन कुटिलपनु ठाना॥
सत्य कहहिं कवि नारिसुभाऊ। सब बिधि अगम अगाध दुराऊ॥
निज प्रतिबिम्ब बरुक गहि जाई। जानि न जाइ नारि-गति भाई॥

दो०—काह न पावकु जारि सक का न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल केहि जग कालु न खाइ॥

का सुनाइ बिधि काह सुनावा। का देखाइ चह काह देखावा॥
एक कहहिं भल भूप न कीन्हा। बर बिचार नहिं कुमतिहि दीन्हा॥
एक बिधातहि दूषनु देहीं। सुधा देखाइ दीन्ह बिषु जेहीं॥
खरभरु नगर, सोचु सब काहू। दुसह-दाहु उर, मिटा उछाहू॥
जरहिं बिषमजर लेहिं उसासा। कवनि राम बिनु जीवन आसा॥
बिपुल बियोग प्रजा अकुलानी। जनु जलचर-गन सूखत पानी॥

अति-विषाद-बस लोग लोगाई। गए मातु पहँ राम गोसाईं॥
मुख प्रसन्न चित चौगुन चाऊ। मिटा सोचु जनि राखइ राऊ॥

दो०—नव-गयंदु रघुबीर-मनु राजु अलान-समान।
छूट जानि बनगवनु सुनि उर अनंदु अधिकान॥

रघु-कुल-तिलक जोरि दोऊ हाथा। मुदित मातुपद नायेउ माथा॥
दीन्हि असीस लाइ उर लीन्हे। भूषन-बसन निछावरि कीन्हे॥
बार बार मुख चुम्बति माता। नयन-नेहजलु पुलकित गाता॥
गोद राखि पुनि हृदय लगाए। स्रवत प्रेमरस पयद सुहाए॥
प्रेम-प्रमोदु न कछु कहि जाई। रंक धनद-पदवी जनु पाई॥
सादर सुन्दर बदनु निहारी। बोली मधुर बचन महतारी॥
कहहु तात जननी बलिहारी। कबहिं लगन मुद-मंगल-कारी॥
सुकृति सील-सुख-सींव सुहाई। जनम-लाभ कै अवधि अघाई॥

दो०—जेहि चाहत नरनारि सब अति आरत एहि भाँति।
जिमि चातक चातकि तृषित बृष्टि सरद रितु स्वाति॥

तात जाउँ बलि बेगि नहाहू। जो मन भाव मधुर कछु खाहू॥
पितु-समीप तब जायेहु भैया। भइ बड़ि बार जाइ बलि मैया॥
मातुबचन सुनि अति अनुकूला। जनु सनेह-सुर-तरु के फूला॥
सुख-मकरंद भरे स्त्रिय-मूला। निरखि राम-मन-भँवरु न भूला॥
धरम-धुरीन धरम-गति जानी। कहेउ मातु सन अति-मृदु-बानी।
पिता दीन्ह मोहि कानन-राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू॥
आयसु देहु मुदित-मन माता। जेहिं मुद मंगल कानन जाता॥
जनि सनेह-बस डरपसि भोरे। आनँदु अंब अनुग्रह तोरे॥

दो०—बरष चारिदस बिपिन बसि करि पितु-बचन प्रमान।
आइ पायँ पुनि देखिहौं मन जनि करसि मलान॥
बचन बिनीत मधुर रघुबर के। सरसम लगे मातु-उर करके॥
सहमि सूखि सुनि सीतल बानी। जिमि जवास परे पावस पानी॥
कहि न जाइ कछु हृदय-बिषादू। मनहुँ मृगी सुनि केहरि-नादू॥
नयन सजल, तन थर-थर काँपी। माँजहि खाइ मीन जनु माँपी॥
धरि धीरज सुत-बदनु निहारी। गदगद बचन कहति महतारी॥
तात, पितहि तुम प्रान-पियारे। देखि मुदित नित चरित तुम्हारे॥
राज देन कहँ सुभ दिन साधा। कहेहु जान बन केहि अपराधा॥
तात, सुनावहु मोहि निदानू। को दिन-कर-कुल भयेउ कृसानू॥
दो०—निरखि रामरुख सचिवसुत कारन कहेउ बुझाइ।
सुनि प्रसंगु रहि मूक जिमि दसा बरनि नहिं जाइ॥
राखि न सकै न कहि सक जाहू। दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू॥
लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। बिधिगति बाम सदा सब काहू॥
धरम सनेह उभय मति घेरी। भइ गति साँप छुछुंदरि केरी॥
राखउँ सुतहि करौं अनुरोधू। धरम जाइ अरु बंधु-बिरोधू॥
कहउँ जान बन तौ बड़ि हानी। संकट-सोच-बिबस भइ रानी॥
बहुरि समुझि तिय-धरमु सयानी। रामु भरतु दोउ सुत सम जानी॥
सरल सुभाउ राम-महतारी। बोली बचन धीर धरि भारी॥
तात, जाउँ बलि कीन्हेउ नीका। पितु-आयसु सब धरम क टीका॥
दो०—राजु देन कहि दीन्ह बनु मोहि न सो दुखलेसु।
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि प्रजहि प्रचंड कलेसु॥

जौं केवल पितु-आयसु ताता । तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता ॥
जौं पितुमातु कहेउ बन जाना । तौ कानन सत-अवध-समाना ॥
पितु बनदेव मातु बनदेवी । खग मृग चरन-सरोरुह-सेवी ॥
अंतहु उचित नृपहि बनवासू । वय विलोकि हिय होइ हरासू ॥
बड़भागी बनु, अवध अभागी । जो रघु-वंस-तिलक तुम्ह त्यागी ॥
पूत परमप्रिय तुम सबही के । प्रान प्रान के जीवन जी के ॥
ते तुम्ह कहहु मातु बन जाऊँ । मैं सुनि बचन बैठि पछिताऊँ ॥
देव-पितर सब तुम्हहि गोसाईं । राखहु पलक नयन की नाईं ॥
अवधि-अंबु, प्रिय परिजन मीना । तुम्ह करुनाकर धरमधुरीना ॥
अस विचारि सोइ करहु उपाई । सबहिं जिअत जेहि भेंटहु आई ॥
जाहु सुखेन बनहिं बलि जाऊँ । करि अनाथ जन परिजन गाऊँ ॥
सब कर आजु सुकृत-फल बीता । भयेउ कराल कालु बिपरीता ॥
दारुन दुसह दाहु उर व्यापा । बरनि न जाइ विलाप-कलापा ॥

दो०—समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ ।
जाइ सासु-पद-कमल-जुग वंदि बैठि सिरु नाइ ॥

दीन्हि असीस सासु मृदुबानी । अति सुकुमारि देखि अकुलानी ॥
बैठि नमित-मुख सोचति सीता । रूप-रासि पति-प्रेम-पुनीता ॥
चलन चहत बन जीवननाथू । केहि सुकृती सन होइहि साथू ॥
की तनु प्रान कि केवल प्राना । विधि-करतब कछु जाइ न जाना ॥
चारु चरननख लेखति धरनी । नूपुर मुखर मधुर कवि बरनी ॥
मनहुँ प्रेमबस बिनती करहीं । हमहिं सीयपद जनि परिहरहीं ॥
मंजु विलोचन मोचति बारी । बोली देखि राम-महतारी ॥

तात सुनहु सिय अति सुकुमारी। सासु-ससुर-परिजनहिं पियारी॥

दो०—पिता जनक भूपालमनि ससुर भानु-कुल-भानु।
पति रवि-कुल-कैरव-बिपिन-बिधु गुन-रूप-निधानु॥

मैं पुनि पुत्र-बधू प्रिय पाई। रूप-रासि गुन-सील सुहाई॥
नयनपुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई॥
कलपबेलि जिमि बहु बिधि लाली। सींचि सनेहसलिल प्रतिपाली॥
फूलत फलत भयेउ बिधि बामा। जानि न जाइ काह परिनामा॥
पलँगपीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पगु अवनि कठोरा॥
जिअनमूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीपबाति नहिं टारन कहऊँ॥
सोइ सिय चलन चहति बन साथा। आयसु काह होइ रघुनाथा॥
चंद-किरन-रस-रसिक चकोरी। रबिरुख नयन सकै किमि जोरी॥

दो०—करि केहरि निसिचर चरहिं दुष्ट जंतु बन भूरि।
बिषबाटिका कि सोह सुत सुभग सजीवनि मूरि॥

बनहित कोल-किरात-किसोरी। रची बिरंचि बिषय-सुख-भोरी॥
पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ। तिन्हहिं कलेसु न कानन काऊ॥
कै तापस-तिय कानन-जोगू। जिन तपहेतु तजा सब भोगू॥
सिय बन बसिहि तात केहि भाँती। चित्र-लिखित कपि देखि डराती॥
सुर-सर-सुभग बनज-बन-चारी। डाबर जोग कि हंसकुमारी॥
अस बिचारि जस आयसु होई। मैं सिख देउँ जानकिहि सोई॥
जौं सिय भवन रहइ कह अम्बा। मोहि कहँ होइ बहुत अवलम्बा॥
सुनि रघुबीर मातु-प्रिय-बानी। सील सनेह सुधा जनु सानी॥

दो०—कहि प्रिय वचन विवेकमय कीन्ह मातु-परितोष।
लगे प्रबोधन जानकिहि प्रगटि विपिन-गुन-दोष॥
मातु समीप कहत सकुचाहीं। बोले समउ समुझि मन माहीं॥
राजकुमारि सिखावन सुनहू। आन भाँति जिय जनि कछु गुनहू॥
आपन मोर नीक जो चहहू। वचनु हमार मानि गृह रहहू॥
आयसु मोरि सासु-सेवकाई। सब विधि भामिनि भवन भलाई॥
एहितें अधिक धरमु नहिं दूजा। सादर सासु-ससुर-पद-पूजा॥
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी। होइहि प्रेमबिकल मतिभोरी॥
तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी। सुन्दरि, समुझायेहु मृदु बानी॥
कहौं सुभाय सपथ सत मोही। सुमुखि, मातुहित राखौं तोही॥
दो०—गुरु-स्रुति-संमत धरमफलु पाइअ बिनहिं कलेस।
हठवस सब संकट सहे, गालव नहुष नरेस॥
मैं पुनि करि प्रमान पितुबानी। बेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी॥
दिवस जात नहिं लागिहि बारा। सुन्दरि सिखवनु सुनहु हमारा॥
जौं हठ करहु प्रेमबस बामा। तौ तुम्ह दुखु पाउब परिनामा॥
काननु कठिन भयंकर भारी। घोर घामु, हिम, वारि, बयारी॥
कुसकंटक मग काँकर नाना। चलब पयादेहिं बिनु पदत्राना॥
चरनकमल मृदु मंजु तुम्हारे। मारग अगम भूमिधर भारे॥
कंदर खोह नदीं नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे॥
भालु बाघ वृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरजु भागा॥
दो०—भूमिसयन बलकल-बसन असन कंद-फल-मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं समय समय अनुकूल॥

नर-अहार रजनीचर चरही। कपटवेष विधि कोटिक करहीं ॥
लागै अति पहार कर पानी। बिपिन-बिपति नहिं जाइ बखानी ॥
ब्याल कराल बिहँग बन घोरा। निसिचर-निकर नारि-नर-चोरा ॥
डरपहिं धीर गहन सुधि आये। मृगलोचनि, तुम्ह भीरु सुभाये ॥
हंसगवनि, तुम्ह नहिं बनजोगू। सुनि अपजसु मोहिं देइहि लोगू ॥
मानस-सलिल-सुधा-प्रतिपाली। जिअइ कि लवनपयोधि मराली ॥
नव-रसाल-बन-बिहरनसीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला ॥
रहहु भवन अस हृदय बिचारी। चंदबदनि, दुखु कानन भारी ॥

दो०—सहज सुहृद-गुरु-स्वामि-सिख जो न करै सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हितहानि ॥

सुनि मृदु बचन मनोहर पिअ के। लोचन ललित भरे जल सिय के ॥
सीतल सिख दाहक भइ कैसे। चकइहि सरद-चन्द-निसि जैसे ॥
उतरु न आव बिकल बैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही ॥
बरबस रोकि बिलोचन-बारी। धरि धीरजु उर अवनिकुमारी ॥
लागि सासुपग कह कर जोरी। छमबि देबि, बड़ि अबिनय मोरी ॥
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि बिधि मोर परम हित होई ॥
मैं पुनि समुझि दीख मन माहीं। पिय-बियोग-सम दुखु जग नाहीं ॥

दो०—प्राननाथ करुनायतन सुन्दर सुखद सुजान।
तुम्ह बिन रघु-कुल-कुमुद-बिधु सुरपुर नरक-समान ॥

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहृद-समुदाई ॥
सासु ससुर गुरु सजन सहाई। सुत सुन्दर सुसील सुखदाई ॥
जहँ लगि नाथ, नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहुँ ते ताते ॥

तन धनु धामु धरनि पुर राजू । पतिविहीन सबु सोकसमाजू ॥
भोग रोगसम, भूषन भारू । जम-जातना-सरिस संसारू ॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं । मो कहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं ॥
जिअ बिनु देह नदी बिनु बारी । तैसिअ नाथ पुरुप बिनु नारी ॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे । सदर-विमल-बिधु-बदनु निहारे ॥

दो०—खग मृग परिजन नागर बनु बलकल विमल दुकूल ।
नाथ-साथ सुर-सदन-सम परनसाल सुखमूल ॥

बनदेवी बनदेव उदारा । करिहहिं सासु ससुर सम सारा ॥
कुस-किसलय-साथरी सुहाई । प्रभु सँग मंजु मनोजतुराई ॥
कन्द मूल फल अमिअ अहारू । अवध-सौध-सत-सरिस पहारू ॥
छिनु-छिनु प्रभु-पद-कमल बिलोकी । रहिहौं मुदित दिवस जिमि कोकी ॥
बन-दुख नाथ कहे बहुतेरे । भय बिषाद परिताप घनेरे ॥
प्रभु-वियोग-लव-लेस-समाना । सब मिलि होहिं न कृपानिधाना ॥
अस जिय जानि सुजान-सिरोमनि । लेइअ संग मोहि छाँड़िअ जनि ॥
बिनती बहुत करौं का स्वामी । करुनामय उर-अन्तर-जामी ॥

दो०—राखिय अवध जो अवधि लगि रहत जानि अहि प्रान ।
दीनबन्धु सुन्दर सुखद सील-संनेह-निधान ॥

मोहि मग चलत न होइहि हारी । छिनु-छिनु चरनसरोज निहारी ॥
सबहिं भाँति पिय-सेवा करिहौं । मारग-जनित सकल स्रम हरिहौं ॥
पाय पखारि बैठि तरुछाहीं । करिहौं बाउ मुदित मन माहीं ॥
स्रम-कन-सहित स्याम तनु देखे । कहँ दुख-समउ प्रानपति पेखे ॥
सम महि तृन-तरु-पल्लव डासी । पाय पलोटिहि सब निसि दासी ॥

चार-चार मृदु मूरति जोही । लागिहि ताति बयारि न मोही ॥
को प्रभुसँग मोहि चितवनिहारा । सिंहबधुहि जिमि ससक सिआरा ॥
मैं सुकुमारि नाथ बनजोगू । तुम्हहिं उचित तप मो कहँ भोगू ॥

दो०—ऐसेउ वचन कठोर सुनि जौं न हृदय विलगान ।
तौ प्रभु-विषम-वियोग-दुख सहिहहिं पाँवर प्रान ॥

अस कहि सीय बिकल भइ भारी । वचन-वियोग न सकी सँभारी ॥
देखि दसा रघुपति जिय जाना । हठि राखे नहिं राखिहि प्राना ॥
कहेउ कृपालु भानु-कुल-नाथा । परिहरि सोचु चलहु वन साथा ॥
नहिं विषाद कर अवसरु आजू । वेगि करहु वन-गवन-समाजू ॥
कहि प्रिय वचन प्रिया समुझाई । लगे मातुपद आसिष पाई ॥
वेगि प्रजादुख मेटव आई । जननी निठुर विसरि जनि जाई ॥
फिरिहि दसा विधि बहुरि कि मोरी । देखिहौं नयन मनोहर जोरी ॥
सुघरी सुदिन तात कव होइहि । जननी जिअत वदनविधु जोइहि ॥

दो०—बहुरि बच्छ कहि लालु कहि रघुपति रघुवर तात ।
कबहिं बोलाइ लगाइ हिय हरपि निरखिहौं गात ॥

लखि सनेह-कातरि महतारी । वचन न आव बिकल भइ भारी ॥
राम प्रबोध कीन्ह विधि नाना । समउ सनेहु न जाइ बखाना ॥
तब जानकी सासुपग लागी । सुनित माय मैं परम अभागी ॥
सेवा-समय दैव वन दीन्हा । मोर मनोरथ सुफल न कीन्हा ॥
तजहु छोभु जनि छाँड़िअ छोहू । करमु कठिन कछु दोसु न मोहू ॥
सुनि सियवचन सासु अकुलानी । दसा कवनि विधि कहौं वखानी ॥
वारहिं वार लाइ उर लीन्ही । धरि धीरजु सिख आसिष दीन्ही ॥

अचल होउ अहिवातु तुम्हारा । जब लगि गंग-जमुन-जल-धारा ॥

दो०—सीतहि सासु असीस सिख दीन्हि अनेक प्रकार ।
चली नाइ पदपदुम सिरु अति हित बारहिं बार ॥

समाचार जब लछिमन पाये । व्याकुल बिलप-बदन उठि धाये ॥
कंप पुलक तन नयन सनीरा । गहे चरन अतिप्रेम-अधीरा ॥
कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े । मीनु दीनु जनु जल तें काढ़े ॥
सोचु हृदय विधि का होनिहारा । सब सुखु सुकृतु सिरान हमारा ॥
मो कहँ काह कहब रघुनाथा । रखिहहिं भवन कि लेइहहिं साथा ॥
राम बिलोकि बन्धु करजोरे । देह गेह सब सन तृनु तोरे ॥
बोले बचनु राम नयनागर । सील-सनेह-सरल-सुख-सागर ॥
तात प्रेमबस जनि कदराहू । समुझि हृदय परिनाम उछाहू ॥

दो०—मातु-पिता-गुरु-स्वामि-सिख सिर धरि करहिं सुभाय ।
लहेउ लाभ तिन्ह जनम कर नतरु जनमु जग जाय ॥

अस जिय जानि सुनहु सिख भाई । करहु मातु-पितु पद-सेवकाई ॥
भवन भरत-रिपुसूदनु नाहीं । राउ वृद्ध मम दुख मन माहीं ॥
मैं बन जाउँ तुम्हहिं लेइ साथा । होइ सबहि विधि अवध अनाथा ॥
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू । सब कहँ परै दुसह-दुख-भारू ॥
रहहु करहु सब कर परितोषू । नतरु तात होइहि बड़ दोषू ॥
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृपु अवसि नरक-अधिकारी ॥
रहहु तात असि नीति विचारी । सुनत लषनु भये व्याकुल भारी ॥
सिअरे बचन सूखि गये कैसे । परसत तुहिन तामरस जैसे ॥

दो०—उतरु न आवत प्रेमबस गहे चरन अकुलाइ।
नाथ दासु मैं, स्वामि तुम्ह तजहु त कहा बसाइ॥

दीन्हि मोहि सिख नीकि गोसाईं। लागि अगम अपनी कदराई॥
नरबर धीर धरम-धुर-धारी। निगम नीति कहँ ते अधिकारी॥
मैं सिसु प्रभु-सनेह-प्रतिपाला। मंदरु मेरु कि लेहिं मराला॥
गुरु पितु मातु न जानौं काहू। कहौं सुभाउ नाथ पतिआहू॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीतिप्रतीति निगम निजु गाई॥
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर-अन्तर-जामी॥
धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति-भूति-सुगति प्रिय जाही॥
मन-क्रम-बचन चरनरत होई। कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई॥

दो०—करुनासिंधु सुबंधु के सुनि मृदु बचन विनीत।
समुझाये उर लाइ प्रभु जानि सनेह सभीत॥

माँगहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई॥
मुदित भये सुनि रघुबर बानी। भयेउ लाभ बड़ गइ बड़ि हानी॥
हरषित हृदय मातु पहिं आये। मनहुँ अंध फिरि लोचन पाये॥
जाइ जननि-पग नायेउ माथा। मनु रघुनन्दन-जानकि-साथा॥
पूँछे मातु मलिन मुख देखी। लषन कही सब कथा बिसेखी॥
गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि दव जनु चहुँ ओरा॥
लषन लखेउ भा अनरथ आजू। एहि सनेह बस करब अकाजू॥
माँगत बिदा सभय सकुचाहीं। जाइ संग, बिधि, कहहि कि नाहीं॥

दो०—समुझि सुमित्रा राम-सिय-रूपु-सुसीलु-सुभाउ।
नृपसनेह लखि धुनेउ सिरु पापिनि दीन्ह कुदाउ॥

धीरजु धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदु बानी॥
तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही॥
अवध तहाँ जहँ राम-निवासू। तहँई दिवसु जहँ भानुप्रकासू॥
जौं पै सीय-रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥
गुरु पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइअहि सकल प्रान की नाईं॥
राम प्रानप्रिय जीवन जी के। स्वारथ-रहित सखा सब ही के॥
पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते। सब मानिअहि राम के नाते॥
अस जिय जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवनु-लाहू॥

दो०—भूरि भागभाजनु भयेहु मोहि समेत बलि जाउँ।
जौं तुम्हरे मन छाँड़ि छलु कीन्ह राम-पद ठाउँ॥

पुत्रवती जुवती जग सोई। रघु-पति-भगतु जासु सुत होई॥
नतरु बाँझ भलि, बादि बिआनी। रामबिमुख सुत तें हित-हानी॥
तुम्हरेहि भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥
सकल सुकृति कर बड़ फल एहू। राम-सीय-पद सहज सनेहू॥
रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्हके बस होहू॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम वचन करेहु सेवकाई॥
तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू। सँग पितु मातु रामु सिय जासू॥
जेहि न रामु बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करहु इहै उपदेसू॥

सो०—मातुचरन सिरु नाइ चले तुरत संकित हृदय।
बागुर बिषम तोराइ मनहुँ भाग मृगु भागबस॥

स्फुट पद्य

कबहुँक अंब अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी कछु करुन-कथा चलाइ॥
दीन सब अँगहीन छीन मलीन अघी अघाइ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु-दासी-दास कहाइ॥
बूझिहैं 'सो है कौन' ? कहिबी नाम दसा जनाइ।
सुनत रामकृपालु के मेरी बिगरिऔ बनि जाइ॥
जानकि जगजननि जन की किए बचन-सहाइ।
तरै 'तुलसीदास' भव तव नाथ गुनगन गाइ॥

सुनु मन मूढ़ सिखावन मेरो।
हरिपद-बिमुख लह्यो न काहु सुख सठ यह समुझि सवेरो॥
बिछुरे ससि रवि मन ! नयननि तें पावत दुख बहुतेरो।
भ्रमत स्रमित निसि-दिवस गगन महँ तहँ रिपु राहु बड़ेरो॥
जद्यपि अति पुनीत सुरसरिता तिहुँ पुर सुजस घनेरो।
तजे चरन अजहूँ न मिटत नित बहिबो ताहू केरो॥
छुटै न बिपति भजे बिनु रघुपति स्रुति संदेह निबेरो।
'तुलसिदास' सब आस छाँड़ि-करि होहि राम कर चेरो॥

कबहूँ मन बिस्राम न मान्यो।
निसि दिन भ्रमत बिसारि सहज सुख जहँ-तहँ इंद्रिन-तान्यो॥
जदपि बिषय सँग सहे दुसह दुख बिषम जाल अरुझान्यो।
तदपि न तजत मूढ़ ममतावस जानत हूँ नहिं जान्यो॥

जनम अनेक किए नाना विधि करम-कीच चित सान्यो।
होइ न बिमल विवेक-नीर बिनु वेद पुरान बखान्यो॥
निज हित नाथ पिता गुरु हरि सों हरषि हृदय नहिं आन्यो।
'तुलसिदास' कब तृषा जाइ? सर खनतहि जनम सिरान्यो॥

ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि रामभगति सुरसरिता आस करत ओसकन की॥
धूमसमूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की।
नहि तहँ सीतलता न बारि पुनि हानि होत लोचन की॥
ज्यों गच-काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह आपने तन की।
टूटत अति आतुर अहार बस छति बिसारि आनन की॥
कहाँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि जानत हौ गति मन की।
'तुलसिदास' प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पन की॥

केसव कहि न जाइ का कहिए?
देखत तव रचना बिचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिए॥
सून्य भीति पर चित्र, रंग नहि, तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोए मिटै न, मरै भीति-दुख, पाइय यहि तनु हेरे॥
रबिकर-नीर बसै अति दारुन मकररूप तेहि माहीं।
बदनहीन सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहीं॥
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि मानै।
'तुलसिदास' परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचानै॥

माधव ! अस तुम्हारि यह माया ।
करि उपाय पचि मरिय, तरिय नहीं जब लगि करहु न दाया ॥
सुनिय, गुनिय, समुझिय, समुझाइय दसा हृदय नहीं आवै ।
जेहि अनुभव बिनु मोह-जनित दारुन भव-बिपति सतावै ॥
ब्रह्म पियूष मधुर सीतल जौ पै मन सो रस पावै ।
तौ कत मृगजल-रूप विषय कारन निसि बासर धावै ॥
जेहिके भवन बिमल चिंतामनि सो कत काँच बटोरै ।
सपने परबस पर्‌यौ जागि देखत केहि जाइ निहोरै ॥
ज्ञान भगति साधन अनेक सब सत्य, झूठ कछु नाहीं ।
'तुलसिदास' हरिकृपा मिटै भ्रम, यह भरोस मन माहीं ॥

जो पै रहनि राम सों नाहीं ।
तौ नर खर कूकर सूकर से जाय जियत जग माहीं ॥
काम, क्रोध, मद, लोभ, नींद, भय, भूख, प्यास, सबही के ।
मनुज देह सुर साधु सराहत सो सनेह सिय-पी के ॥
सूर, सुजान, सपूत सुलच्छन गनियत गुन गरुआई ।
बिनु हरिभजन इँनारुन के फल, तजत नहीं करुआई ॥
कीरति, कुल, करतूति, भूति भलि, सील, सरूप सलोने ।
'तुलसी' प्रभु-अनुराग-रहित जस सालन साग अलोने ॥

लाभ कहा मानुष तनु पाए ।
काय, वचन, मन सपनेहु कबहुँक घटत न काजु पराए ॥
जौ सुख सुरपुर नरक गेह बन आवत बिनहिं बुलाए ।

तेहि सुख कहँ बहु जतन करत मन, समुझत नहिं समुझाए ॥
परदारा, परद्रोह, मोहबस किए मूढ़ मन भाए।
गर्भबास दुखरासि जातना तीव्र बिपति बिसराए ॥
भय निद्रा मैथुन अहार सबके समान जग जाए।
सुर-दुरलभ तनु धरि न भजे हरि, मद अभिमान गवाए ॥
गई न निज-पर-बुद्धि, सुद्ध ह्वै रहे न राम-लय लाए।
'तुलसिदास' यह अवसर बीते का पुनि के पछिताए ॥

बैठी सगुन मनावति माता।
कब ऐहैं मेरे बाल कुसल घर कहहु काग फुरि बाता ॥
दूध भात की दोनी दैहौं सोने चोंच मढ़ैहौं।
जब सिय सहित बिलोकि नयन भरि राम-लषन उर लैहौं ॥
अवधि समीप जानि जननी जिय अति आतुर अकुलानी।
गनक बोलाइ पायँ परि पूछति प्रेम-मगन मृदु बानी ॥
तेहि अवसर कोउ भरत निकट तें समाचार लै आयो।
प्रभु-आगमन सुनत 'तुलसी' मनो मीन मरत जल पायो ॥

पालने रघुपति झुलावै।
लै लै नाम सप्रेम सरस स्वर कौसल्या कल कीरति गावै ॥
केकिकंठ द्युति, स्यामबरन बपु, बाल-विभूषन बिरचि बनाए।
अलकैं कुटिल, ललित लटकन भ्रू, नील नलिन दोउ नयन सुहाए ॥

सिसु सुभाय सोहत जब कर गहि वदन निकट पद-पल्लव लाए।
मनहुँ सुभग जुग भुजग जलज भरि लेत सुधा ससि सों सचु पाए॥
उपर अनूप विलोकि खेलौना किलकित पुनि पुनि पानि पसारत।
मनहुँ उदय अंभोज अरुन सों विधु-भय विनय करत अति आरत॥
'तुलसिदास' बहु-बास-विबस अलि गुंजत सुछवि न जाति बखानी।
मनहुँ सकल स्रुति ऋचा मधुप ह्वै विसद सुजस बरनत वर बानी॥

मीराँबाई

पद

(१)

बसो मोरे नैनन में नँदलाल ।
मोहनी मूरति, साँवरी सूरति नैना बने बिसाल ।
मोर-मुगट, मकराकृति कुंडल अरुण तिलक दिये भाल ।
अधर-सुधा-रस मुरली राजति उर बैजंती माल ।
छुद्र घंटिका कटितट सोभित नूपुर-सब्द रसाल ।
'मीराँ' प्रभु संतन सुखदाई भगत-बछल गोपाल ॥

(२

मन रे परसि हरि के चरण ।
सुभग सीतल कँवल-कोमल, त्रिविध ज्वाला-हरण ॥
जिण चरण प्रहलाद परसे इन्द्र-पदवी धरण ॥
जिण चरण ध्रुव अटल कीने राखि अपनी सरण ॥
जिण चरण ब्रह्मांड भेंट्यो नख सिख सिरी धरण ॥
जिण चरण प्रभु परसि लीने, तरी गोतम-घरण ॥
जिण चरण कालीनाग नाथ्यो गोप-लीला-करण ॥
जिण चरण गोवरधन धर्‌यो इन्द्र को ग्रब हरण ॥
दासी 'मीराँ' लाल गिरधर अगम तारण तरण ॥

(३)

भज मन चरण-कँवल अविनासी ।
जेताइ दीसै धरण-गगन विच तेताइ सब उठ जासी ।
इस देही का गरब न करणा माटी में मिल जासी ॥
यो संसार चहर की बाजी साँझ पड़्याँ उठ जासी ।
कहा भयो तीरथ व्रत कीने कहा लिये करवत कासी ?
कहा भयो है भगवा पहर्याँ घर तज भये सँन्यासी ?
जोगी होइ जुगत नहिं जाणी उलट जनम फिर आसी ।
अरज करौं अबला कर जोरे स्याम तुम्हारी दासी ।
'मीराँ' के प्रभु गिरधर नागर काटो जम की फाँसी ॥

(४)

या मोहन के मैं रूप लुभानी ।
सुंदर वदन कमल दल लोचन बाँकी चितवन मँद मुसकानी ।
जमना के नीरे तीरे धेन चरावै बंसी में गावै मीठी बानी ।
तन मन धन गिरधर पर वारूँ चरण-कमल 'मीराँ' लपटानी ॥

(५)

माई री मैं तो लीयो गोविन्दो मोल ।
कोई कहै छाने कोई कहै चौड़े लियो री बजंता ढोल ।
कोई कहै मुँहघो कोई कहै सुँहघो लियो री तराजू तोल ।
कोई कहै कारो कोई कहै गोरो लियो री अमोलक मोल ।
या ही कूँ सब लोग जाणत है लियो री आँखी खोल ।
'मीराँ' कूँ प्रभु दरसण दीज्यौ पूरब जनम को कोल ।

(६)

देखत राम हँसे सदामाँ कूँ देखत राम हँसे।
फाटी तो फूलड़ियाँ पाँव उभाणे चलतैं चरण घसे।
बालपणे का मिंत सदामाँ अब क्यूँ दूर बसे।
कहा भावज ने भेंट पठाई तांदुल तीन पसे।
कित गई प्रभु मोरी टूटी टपरिया हीरा मोती लाल कसे।
कित गई प्रभु मोरी गउअन बछिया द्वारा बिच हँसती फसे।
'मीराँ' के प्रभु हरि अविनासी सरणे तोरे बसे।

(७)

नहिं ऐसो जनम बारंबार।
का जाणूँ कछु पुण्य प्रगटे मानुसा अवतार॥
बढ़त छिन-छिन घटत पल-पल जात न लागै बार।
बिरछ के ज्यों पात टूटे बहुरि न लागै डार॥
भौ-सागर अति जोर कहिये अनँत ऊँडो धार॥
राम-नाम का बाँध बेड़ा उतर परले पार॥

(८)

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुगट मेरो पति सोई।
छाँड़ि दई कुल की कानि कहा करिहै कोई।

सन्तन ढिंग बैठि बैठि लोक-लाज खोई।
अँसुअन जल सींचि सींचि प्रेम-बेलि बोई।
अब तो बेल फैल गई आणँद फल होई।
भगति देखि राजी हुई जगति देखि रोई।
दासी 'मीराँ' लाल गिरधर तारो अब मोई।

(९)

करम-गत टारे नाहि टरे।
सतवादी हरिचँद-से राजा सो तो नीच घर नीर भरे।
पाँच पांडु अरु कुँती द्रोपदी हाड हिमालै गरे।
जग्य कियो बलि लेण इन्द्रासण सो पाताल धरे।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर विख से अम्रित करे।

(१०)

मैंने राम रतन धन पायौ।
बसत अमोलक दी मेरे सतगुर करि किरपा अपणायौ।
जनम जनम की पूँजी पाई जग में सबै खोवायौ।
खरचै नहिं कोई चोर ना लेवै दिन-दिन बधत सवायौ।
सत की नाव खेवटिया सतगुर भवसागर तरि आयौ।
'मीराँ' के प्रभु गिरधर नागर हरखि-हरखि जस गायौ।

(११)

फागुन के दिन चार रे, होरी खेल मना रे।
बिनि करताल पखावज बाजै अणहद की झणकार रे।
बिनि सुर राग छतीसूँ गावै रोम-रोम रँग सार रे।
सील संतोख की केसर घोली प्रेम प्रीत पिचकार रे।
उड़त गुलाल लाल भयो अंबर बरसत रंग अपार रे।
घट के सब पट खोल दिये हैं लोक-लाज सब डार रे।
होरी खेलि पीव घर आये सोइ प्यारी पिय प्यार रे।
'मीराँ' के प्रभु गिरधर नागर चरण-कँवल बलिहार रे।

केशवदास

हनुमानजी का लंका-गमन

[दोहा]

उदधि नाकपति-शत्रु को, उदित जानि बलवंत ।
अंतरिच्छ ह्वाँ लच्छि पद, अच्छ छुयो हनुमंत ॥ १ ॥
बीच गये सुरसा मिली, और सिंहिका नारि ।
लीलि लियो हनुमंत तेहि, कढ़े उदर कहँ फारि ॥ २ ॥

[तारक छंद]

कछु राति गये करि देश दशा सी ।
पुर माँझ चले वनराजि विलासी ॥
जब ही हनुमंत चले तजि शंका ।
मग रोकि रह्यो तिय ह्वै तब लंका ॥ ३ ॥

हनुमान-लंका-संवाद

लंका—कहि मोहि उलंघि चले तुम को हो ।
अति सूच्छम रूप धरे मन मोहो ॥
पठये क्यहि कारण कौन चले हो ।
सुर हौ किधौं कोऊ सुरेश भले हौ ।
हनुमान—हम बानर हैं रघुनाथ पठाये ।
तिनकी तरुणी अवलोकन आये ॥
लंका—हति मोहिं महामति भीतर जैये ।
हनुमान—तरुणीहिं हते कवलौं सुख पैये ॥ ५ ॥

लंका—तुम मारेहि पै पुर पैठन पैहौ।
हठ कोटि करौ घरहीं फिरि जैहौ॥
हनुमंत बली तेहि थापर मारो।
तजि देह भई तब ही बर नारी॥ ६॥

[चौपाई]

लंका—धनदपुरी हौं रावण लीन्ही।
बहु विधि पापन के रस भीनो॥
चतुरानन चित चिंतन कीन्हों।
बरु करुणा करि मोकहँ दीन्हों॥
जब दशकंठ सिया हरि लैहैं।
हरि हनुमंत विलोकन ऐहैं॥
जब वह तोहि हतै तजि शंका।
तब प्रभु होइ विभीषण लंका॥ ८॥
चलन लगो जब ही तब कीजो।
मृतक शरीरहि पावक दीजो॥
यह कहि जात भई वह नारी।
सब नगरी हनुमंत निहारी॥ ९॥

रावण-शयनागार

तब हरि रावण सोवत देख्यो।
मणिमय पलका की छबि लेख्यो॥
तहँ तरुणी बहु भाँतिन गावैं।
बिच-बिच आवझ बीन बजावैं॥ १

मृतक चिता पर मानहु सोहैं।
चहुँ दिशि प्रेतवधू मन मोहैं॥
जहँ-जहँ जाइ तहाँ दुख दूनो।
सिय विन है सिगरो घर सूनो॥ ११॥

[भुजंगप्रयात छंद]

कहूँ किन्नरी किन्नरी लै बजावैं।
सुरी आसुरी बाँसुरी गीत गावैं॥
कहूँ यक्षिणी पक्षिणी को पढ़ावैं।
नगी कन्यका पन्नगी को नचावैं॥ १२॥
पियै एक हाला गुहै एक माला।
बनी एक बाला नचै चित्रशाला॥
कहूँ कोकिला कोक की कारिका को।
पढ़ावै सुआ लै शुकी शारिका को॥ १३॥
फिर्यो देखिकै राजशाला सभा को।
रह्यो रीझिकै वाटिका की प्रभा को॥
फिर्यो और चौहूँ चित शुद्ध गीता।
विलोकी भली सिंसिपा मूल सीता॥ १४॥

सीता-दर्शन

धरे एक बेनी मिली मैल सारी।
मृणाली मनो पंक सों काढ़ि डारी॥
सदा रामनामै ररै दीन बानी।
चहूँ ओर हैं एकसी दुःखदानी॥ १५॥

मसी बुद्धि-सी चित्त चितानि मानों।
किधौं जीभ दन्तावली में वखानो॥
किधौं घेरिकै राहु नारीन लीनी।
कला चंद्र की चारु पीयूष भीनी॥ १६॥
किधौं जीव की जोति मायान लीनी।
अविद्यान के मध्य विद्या प्रवीनी॥
मनो संबर-स्त्रीन मैं काम-वामा।
हनूमान ऐसो लखी राम-रामा॥ १७॥
तहाँ देव-द्वेषी दशग्रीव आयो।
सुन्यो देवि सीता महादुःख छायो॥
सबै अंग लै अंग ही में दुरायो।
अधोदृष्टि कै अश्रुधारा बहायौ॥ १८॥

रावण-सीता-संवाद

रावण—सुनो देवि मोपै कछु दृष्टि दीजै।
इतो शोच तो राम काजे न कीजै॥
बसैं दंडकारण्य देखै न कोऊ।
जो देखै महाबावरो होय सोऊ॥ १९॥
कृतघ्नी कुदाता कुकन्याहि चाहै।
हितू नग्न मुंडीन ही को सदा है॥
अनाथै सुन्यो मैं अनाथानुसारी।
बसैं चित्त दंडी जटी मुंडधारी॥ २०॥

तुम्हैं देवि दूपै हितू ताहि मानै।
उदासे न तोसों सदा ताहि जानै॥
महानिर्गुणी नाम ताको न लीजै।
सदा दास मोपै कृपा क्यों न कीजै॥ २१॥
अदेवी नृदेवीन की होहु रानी।
करैं सेव बानी मघौनी मृडानी॥
लिये किन्नरी किन्नरी गीत गावैं।
सुकेशी नचैं उर्वशी मान पावैं॥ २२॥

[मालिनी छंद]

सीता—तृण विच दै बोली सीय गंभीर बानी।
दशमुख शठ को तू कौन की राजधानी॥
दशरथ-सुत द्वेषी रुद्र ब्रह्मा न भासै।
निशिचर बपुरा तू क्यों न स्यो मूल नासै॥ २३॥
अति तनु धनुरेखा नेक नाकी न जाकी।
खल खर शर धारा क्यों सहै तिच्छ ताकी॥
बिड़कन घन घूरे भच्छि क्यों बाज जीवै।
शिव-शिर शशिश्री को राहु कैसे सो छीवै॥ २४॥
उठि उठि शठ ह्यां ते भागु तौलों अभागे।
मन वचन बिसर्पी सर्प जौलो न जागे॥
बिकल सकुल देखौं आसु ही नाश तेरो।
निहट मृतक तोकों रोप मारै न मेरो॥ २५॥

[दोहा]

अवधि दई द्वै मास की, कह्यो राक्षसिन बोलि।
ज्यों समुझै समुझाइयो, युक्ति-छुरी सों छोलि ॥ २६ ॥

मुद्रिका-प्रदान

[चामर छंद]

देखि देखिकै अशोक राजपुत्रिका कह्यो।
देहि मोहिं आगि तैं जो अंग आगि ह्वै रह्यो ॥
ठौर पाइ पौनपुत्र डारि मुद्रिका दई।
आस-पास देखिकै उठाय हाथ कै लई ॥ २७ ॥

[तोमर छंद]

जब लगी सियरी हाथ। यह आगि कैसी नाथ ॥
यह कह्यो लषि तब ताहि। मणि-जटित मुँदरी आहि ॥२८॥
जब बाँचि देख्यो नाउ। मन पर्‌यो संभ्रम भाउ ॥
आबाल ते रघुनाथ। यह धरी अपने हाथ ॥२९॥
बिछुरी सो कौन उपाउ। केहि आनियो यहि ठाउ ॥
सुधि लहौं कौन उपाउँ। अब काहि बूझन जाउँ ॥३०॥
चहुँ ओर चितै सत्रास। अवलोकियो आकास ॥
तहँ शाख बैठो नोठि। तब पर्‌यो बानर डीठि ॥३१॥

सीता-हनुमान संवाद

तब कह्यो को तू आहि। सुर असुर मोतन चाहि ॥
कै यक्ष पक्ष विरूप। दशकंठ वानर रूप ॥

कहि आपना तू भेद। न तु चित्त उपजत खेद॥
कहि वेगि वानर पाप। न तु तोहि देहौं शाप॥
हरि वृत्त शाखा झूमि। कपि उतरि आयो भूमि॥३२॥

[पद्धटिका छंद]

कर जोरि कह्यो हौं पवन-पूत।
जिय जननि जानु रघुनाथ-दूत॥
रघुनाथ कौन दशरत्थ-नंद।
दशरत्थ कौन अज-तनय-चंद॥ ३३॥
केहि कारण पठये यहि निकेत।
निज देन लेन संदेश हेत॥
गुण रूप शील शोभा सुभाउ।
कछु रघुपति के लक्षण बताउ॥ ३४॥
अति यदपि सुमित्रा-नंद भक्त।
अति सेवक हैं अति शूर शक्त॥
अरु यदपि अनुज तीन्यो समान॥
पै तदपि भरत भावत निदान॥ ३५॥
ज्यो नारायण-उर श्री वसंति।
त्यो रघुपति-उर कछु द्युति लसंति॥
जग जितने हैं सब भूमि भूप॥
सुर असुर न पूजैं राम रूप॥ ३६॥

[निशिपालिका छंद]

सीता—मोहि परतीति यहि भाँति नहि आवई।

प्रीति कहि घों सुनर बानरनि क्यों भई ॥
बात सब वर्णि परतीति हरि त्यों दई।
आँसु अन्हवाइ उर लाइ मुँदरी लई ॥ ३७ ॥

[दोहा]

आँसु बरषि हियरे हरषि, सीता सुखद सुभाइ।
निरखि-निरखि पिय मुद्रिकहि, बरणति है बहु भाइ ॥ ३८ ॥

मुद्रिका-वर्णन

[पद्धटिका छंद]

यह सूरकिरण तम-दुःखहारि।
शशिकला किधौं उर शीतकारि ॥
कल कीरति-सी शुभ सहित नाम।
कै राज्यश्री यह तजी राम ॥ ३९ ॥

कै नारायण उर सम लसंति।
शुभ अंकन ऊपर श्री वसंति ॥
वर त्रिया-सो आनंद-दानि।
युत अष्टापद मनु शिवा मानि ॥ ४० ॥

जनु माया अच्छर सहित देखि।
कै पत्री निश्चयदानि लेखि ॥
प्रिय प्रतीहारनी-सी निहारि।
श्रीरामो - जय उच्चारकारि ॥ ४१ ॥

प्रिय पठई मानो सखि सुजान।
जगभूषण को भूषण निधान॥
निजु आई हमको सीख देन।
यह किधौं हमारो मरम लेन॥ ४२॥

[दोहा]

सुखदा शिखदा अर्थदा, यशदा रसदातारि।
रामचंद्र की मुद्रिका, किधौं परम गुरु नारि॥ ४३॥
बहु बरणा सहज प्रिया, तम-गुनहरा प्रमान।
जग मारग दरशावनी, सूरज-किरण-समान॥ ४४॥
श्रीपुर में वन मध्य हौं, तू मग करी अनीति।
कहि मुँदरी अब तियन की, को करि है परतीति॥ ४५॥

[पद्धटिका छंद]

कहि कुशल मुद्रिके रामगात।
पुनि लक्ष्मण सहित समान तात॥
यह उत्तर देति न बुद्धिवंत।
केहि कारण धौं हनुमंत संत॥ ४६॥

[दोहा]

हनुमान—तुम पूँछत कहि मुद्रिके, मौन होति यहि नाम।
कंकन की पदवी दई, तुम बिन याकहँ राम॥ ४७॥

राम-विरह-वर्णन

[दंडक]

दीरघ दरीन बसैं 'केशोदास' केशरी ज्यों,
केशरी को देखि वन-करी ज्यों कँपत हैं।
बासर की संपति उलूक ज्यों न चितवत,
चकवा ज्यों चंद चितै चौगुनो चँपत हैं॥
केका सुनि व्याल ज्यों बिलात जात घनश्याम,
घननि की घोरनि जवासो ज्यों तपत है।
भौंर ज्यों भँवत वन योगी ज्यों जगत रैनि,
साकत ज्यों राम नाम तेरोई जपत हैं॥ ४८॥

[दोहा]

दुख देखे सुख होहिगो, सुक्ख न दुःख-विहीन।
जैसे तपसी तप तपे, होत परम-पद-लीन॥ ४९॥
बरषा वैभव देखिकै, देखी शरद सकाम।
जैसे रण में काल भट, भेंटि भेंटियत बाम॥ ५०॥
दुःख देखिकै देखिहौ, तब सुख आनँदकंद।
तपन-ताप तपि द्यौस निशि, जैसे शीतल चंद॥ ५१॥
अपनी दशा कहा कहौं, दीप-दशा-सी देह।
जरत जाति बासर निशा, 'केशव' सहित सनेह॥ ५२॥
सुगति सुकेसि सुनैनि सुनि, सुमुखि सुदंति सुश्रोणि।
दरशावैगो बेगि ही, तुमको सरसिज-योनि॥ ५३॥

[हरिगीत छंद]

कछु जननि दे परतीति जासों रामचंद्रहि आवई ।
शुभ शीश की मणि दई यह कहि सुयश तव जग गावई ॥
सब काल ह्वैहौ अमर अरु तुम समर जयपद पाइहौ ।
सुत आजु ते रघुनाथ के तुम परम भक्त कहाइहौ ॥५४॥
कर जोरि पग परि तोरि उपवन कोरि किंकर मारियो ।
पुनि जंबुमाली मंत्रिसुत अरु पँच मंत्रि सँहारियो ॥
रण मारि अक्षकुमार बहु विधि इंद्रजित सों युद्ध कै ।
अति ब्रह्मशस्त्र प्रमाण मानि सो वश्य भो मन शुद्ध कै ॥५५॥

हनुमान-रावण-संवाद

[विजय छंद]

रे कपि कौन तु अक्ष को घातक ? दूत बली रघुनंदनजी को ।
को रघुनंदन रे ? त्रिशिरा खरदूषण दूषण भूषण भू को ॥
सागर कैसे तर्यो ? जैसे गोपद, काज कहा ? सिय-चोरहि देखो ।
कैसे बँधायो ? जो सुंदरि तेरी छुई दृग सोवत पातक लेखो ॥५६॥

[चामर छंद]

रावण—कोरि-कोरि यातनानि फोरि-फारि मारिये ।
काटि-काटि फारि माँसु बाँटि-बाँटि डारिये ॥
खाल खैंचि-खैंचि हाड़ भूँजि-भूँजि खाहु रे ।
पौरि टाँगि रुंड-मुंड लै उड़ाइ जाहु रे ॥ ५७ ॥
विभीषण—दूत मारिये न राजराज , छोड़ि दीजई ।
मंत्रि मित्र पूछिये सो और दंड कीजई ॥

एका रंक मारि क्यों बड़ो कलंक लीजई।
बूँद सोखिगो कहा महासमुद्र छीजई॥ ५८॥

तूल तेल बोरि-बोरि जोरि-जोरि बाससी।
लै अपार रार ऊन दून सूत सों कसी॥
पूछ पौनपूत की सँवाँरि बारि दी जहीं।
अंग को घटाइकै उड़ाइ जात भो तहीं॥ ५९॥

[चंचरी छंद]

धाम धामनि आगि की बहु ज्वाल-माल विराजहीं।
पौन के झकझोर ते झँझरी झरोखन भ्राजहीं॥
बाजि वारण शारिका शुक मोर जोरन भाजहीं।
छुद्र ज्यों विपदाहि आवत छोड़ि जात न लाजहीं॥ ६०॥

लंका-दाह

[भुजंगप्रयात छंद]

जटी अग्निज्वाला अटा सेत हैं ज्यों।
शरत्काल के मेघ संध्या समै ज्यों॥
लगी ज्वाल धूमावली नील राजैं।
मनो स्वर्ण की किंकिणी नाग साजैं॥ ६१॥

कहूँ रैनिचारी गहे ज्योति गाढ़े।
मनो ईश-रोपाग्नि में काम डाढ़े॥

कहूँ कामिनी ज्वाल-मालानि भोरें।
तजैं लाल सारी अलंकार तोरें॥ ६२॥
कहूँ भौन राते रचै धूम छाहीं।
शशी सूर मानों लसैं मेघ माहीं॥
जरै शस्त्रशाला मिली गंधमाला।
मलै अद्रि मानौ लगी दाव-ज्वाला॥ ६३॥
चली भागि चौहूँ दिशा राजरानी।
मिलीं ज्वाल-माला फिरै दुःखदानी॥
मनो ईश बानावली लाल लोलैं।
सबै दैत्यजायान के संग डोलैं॥ ६४॥

[सवैया]

लंक लगाइ दई हनुमंत विमान बचे अति उच्चरुची है।
पावक में उचटैं बहुधा मनि रानी रटैं पानी पानी दुखी है॥
कंचन को पघिल्यो पुर पूर पयोनिधि में पसरो सो सुखी है।
गंग हजारमुखी गुनि 'केशो' गिरा मिली मानो अपारमुखी है॥६५॥

[दोहा]

हनुमत लाई लंक सब, बच्यो विभीषण धाम।
ज्यों अरुणोदय बेर में, पंकज पूरब याम॥६६॥

[संयुता छंद]

हनुमंत लंक लगाइकै। पुनि पूँछ सिंधु बुझाइकै॥
शुभ देख सीतहि पाँ परे। मनि पाय आनँद जी भरे॥६७॥

रघुनाथ पै जब ही गये। उठि अंक लावन को भये॥
प्रभु मैं कहा करणी करी। शिर पाय की धरणी धरी॥६८॥

[दोहा]

चिंतामणि-सी मणि दई, रघुपति कर हनुमंत।
सीताजू को मन रँग्यो, जनु अनुराग अनंत॥६९॥

सीता-संदेश

[घनाक्षरी]

भौंरनी ज्यों भ्रमति रहति बन-बीथिकानि,
हंसिनी ज्यों मृदुल मृणालिका चहति है।
हरिणी ज्यों हेरति न केशरी के काननहिं,
केका सुनि व्याली ज्यों बिलानहीं चहति है।
पीउ-पीउ रटत रहति चित चातकी ज्यों,
चंद चितै चकई ज्यों चुप ह्वै रहति है।
सुनहु नृपति राम विरह तिहारे ऐसी,
सूरतिन सीताजू की मूरति गहति है॥७०॥

[दोहा]

श्रीनृसिंह-प्रह्लाद की, वेद जो गावत गाथ।
गये मास दिन आशु ही, झूँठो ह्वैहै नाथ॥७१॥

[दंडक]

राम—साँचो एक नाम हरि लीन्हे सब दुःख हरि,
और नाम परिहरि नरहरि ठाये हो।

वानर नहीं हौ तुम मेरे बाण रोष सम,
बलीमुख शूर बली मुख निजु गाये हौ।
शाखामृग नाहीं बुद्धि बलन के शाखा मृग,
कैधौं वेद शाखामृग 'केशव' को भाये हौ।
साधु हनुमंत बलवंत यशवंत तुम,
गये एक काज को अनेक करि आये हौ॥ ७२॥

[तोमर छंद]

हनुमान—गई मुद्रिका लै पार। मनि मोहिं ल्याई वार॥
कह कर्‌यो मैं बलरंक। अतिमृतक जारी लंक॥ ७३॥

रसखान

प्रेमबाटिका

प्रेम प्रेम सब कोउ कहत, प्रेम न जानत कोय।
जो जन जानै प्रेम तो, मरै जगत क्यों रोय ॥ १ ॥
प्रेम अगम अनुपम अमित, सागर-सरिस बखान।
जो आवत एहि ढिग बहुरि, जात नाहिं 'रसखान' ॥ २ ॥
प्रेम-बारुनी छानिकै, बरुन भए जलधीस।
प्रेमहिं तें विष-पान करि, पूजे जात गिरीस ॥ ३ ॥
प्रेमरूप दर्पन अहो, रचै अजूबो खेल।
यामें अपनो रूप कछु, लखि परिहै अनमेल ॥ ४ ॥
कमलतंतु सों छीन अरु, कठिन खड्ग की धार।
अति सूधो टेढ़ो बहुरि, प्रेमपंथ अनिवार ॥ ५ ॥
लोक-वेद-मरजाद सब, लाज काज संदेह।
देत बहाए प्रेम करि, बिधि-निषेध को नेह ॥ ६ ॥
कबहुँ न जा पथ भ्रम-तिमिर, रहै सदा सुखचंद।
दिन दिन बाढ़त ही रहै, होत कबहुँ नहिं मंद ॥ ७ ॥
भले बृथा करि पचि मरौ, ज्ञान-गरूर बढ़ाय।
बिना प्रेम फीको सबै, कोटिन किए उपाय ॥ ८ ॥
श्रुति पुरान आगम स्मृतिहि, प्रेम सबहिं को सार।
प्रेम बिना नहिं उपज हिय, प्रेम-बीज अँकुवार ॥ ९ ॥

ज्ञान, कर्मऽरु उपासना, सब अहमिति को मूल।
दृढ़ निश्चय नहि होत बिन, किए प्रेम अनुकूल ॥ १० ॥
शास्त्रन पढ़ि पंडित भए, कै मौलवी क़ुरान।
जुपै प्रेम जान्यों नहीं, कहा कियो 'रसखान' ॥ ११ ॥
काम क्रोध मद मोह भय, लोभ द्रोह मात्सर्य।
इन सबही तें प्रेम है, परे कहत मुनिवर्य ॥ १२ ॥
बिनु गुन जोवन रूप धन, बिनु स्वारथ हित जानि।
शुद्ध, कामना तें रहित, प्रेम सकल-रस-खानि ॥ १३ ॥
अति सूक्ष्म कोमल अतिहि, अति पतरो अति दूर।
प्रेम कठिन सबतें सदा, नित इकरस भरपूर ॥ १४ ॥
जग में सब जान्यौ परै, अरु सब कहै कहाय।
पै जगदीसऽरु प्रेम यह, दोऊ अकथ लखाय ॥ १५ ॥
जेहि बिनु जाने कछुहि नहिं, जान्यों जात बिसेस।
सोइ प्रेम, जेहि जानिकै, रहि न जात कछु सेस ॥ १६ ॥
मित्र कलत्र सुबन्धु सुत, इनमें सहज सनेह।
शुद्ध प्रेम इनमें नहीं, अकथ-कथा सबिसेह ॥ १७ ॥
इकअंगी बिनु कारनहिं, इकरस सदा समान।
गनै प्रियहि सर्वस्व जो, सोइ प्रेम प्रमान ॥ १८ ॥
डरै सदा, चाहै न कछु, सहै सबै जो होय।
रहै एकरस चाहिकै, प्रेम बखानो सोय ॥ १९ ॥
प्रेम प्रेम सब कोउ कहै, कठिन प्रेम की फाँस।
प्रान तरफि निकरे नहीं, केवल चलत उसाँस ॥ २० ॥

प्रेम हरी को रूप है, त्यों हरि प्रेमसरूप।
एक होइ द्वै यों लसैं, ज्यों सूरज अरु धूप॥ २१॥
ज्ञान ध्यान विद्या मती, मत विश्वास विवेक।
बिना प्रेम सब धूर हैं, अग जग एक अनेक॥ २२॥
प्रेम-फाँस में फँसि मरै, सोई जिए सदाहिं।
प्रेममरम जाने बिना, मरि कोउ जीवत नाहिं॥ २३॥
जग में सबतें अधिक अति, ममता तनहिं लखाय।
पै या तनहूँ तें अधिक, प्यारो प्रेम कहाय॥ २४॥
जेहि पाए बैकुंठ अरु, हरिहूँ की नहिं चाहि।
सोइ अलौकिक सुद्ध सुभ, सरस सुप्रेम कहाहि॥ २५॥
कोउ याहि फाँसी कहत, कोउ कहत तरवार।
नेजा भाला तीर कोउ—कहत अनोखी ढार॥ २६॥
पै मिठास या मार के, रोम रोम भरपूर।
मरत जियै झुकतो थिरै, बनै सु चकनाचूर॥ २७॥
हरि के सब आधीन पै, हरी प्रेम-आधीन।
याही तें हरि आपुहीं, याहि बड़प्पन दीन॥ २८॥
वेद-मूल सब धर्म यह, कहै सबै श्रुतिसार।
परमधर्म है ताहु तें, प्रेम एक अनिवार॥ २९॥
जदपि जसोदानंद अरु, ग्वालबाल सब धन्य।
पै या जग में प्रेम को, गोपी भई अनन्य॥ ३०॥
श्रवन कीरतन दरसनहिं, जो उपजत सोइ प्रेम।
शुद्धाशुद्ध विभेद तें, द्वैविध ताके नेम॥ ३१॥

स्वारथ-मूल अशुद्ध त्यों, शुद्ध स्वभावऽनुकूल।
नारदादि प्रस्तार करि, कियो जाहि को तूल ॥ ३२ ॥
रसमय स्वाभाविक विना-स्वारथ अचल महान।
सदा एकरस शुद्ध सोइ, प्रेम अहै 'रसखान' ॥ ३३ ॥

स्फुट पद्य

(१)

मानुप हौं तो वही 'रसखानि' बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पशु हौं तौ कहा बस मेरो चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन ॥
पाहन हौं तौ वही गिरि को जो धरयो कर छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हौं तौ बसेरो करौं मिलि कालिंदी कूल कदंब की डारन ॥

(२)

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि नवो निधि को सुख नंद की गाइ चराइ बिसारौं ॥
'रसखानि' कबौं इन आँखिन सों ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटि करौ कलधौत के धाम करील को कुंजन ऊपर वारौं ॥

(३)

गावैं गुनी गनिका गंधर्व औ सारद सेस सबै गुन गावत।
नाम अनंत गनंत गनेस ज्यौं ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावत ॥
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध निरंतर जाहि समाधि लगावत।
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावत ॥

(४)

धूर भरे अति शोभित स्याम जू तैसी बनी सिर सुंदर चोटी।
खेलत खात फिरैं अँगना पग पैंजनी बाजती पीरी कछोटी॥
वा छबि को 'रसखानि' बिलोकत वारत काम कला निज कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी हरि हाथ सों लै गयो माखन रोटी॥

(५)

कल कानन कुंडल मोरपखा उर पैं बनमाल बिराजति है।
मुरली कर में अधरा मुसकानि तरंग महाछबि छाजति है॥
'रसखानि' लखै तन पीत पटा सत दामिनी की दुति लाजति है।
वह बाँसुरी की धुनि कान परें कुलकानि हियो तजि भाजति है॥

(६)

ब्रह्म में ढूँढ़्यो पुरानन गानन वेद-रिचा सुनि चौगुने चायन।
देख्यो सुन्यो कबहूँ न कितूं वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन॥
टेरत हेरत हारि पर्‌यो 'रसखानि' बतायो न लोग लुगायन।
देखो दुरो वह कुंजकुटीर में बैठो पलोटत राधिका-पायन॥

(७)

सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं।
जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद अभेद सुवेद बतावैं॥
नारद से सुक व्यास रहैं पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥

(८)

मकराकृत कुंडल गुंज की माल वे लाल लसैं पग पाँवरिया।
बछरानि चरावन के मिस भावतो दै गयो भावती भाँवरिया॥
'रसखानि' विलोकत ही सिगरी भई बावरिया ब्रज डाँवरिया।
सजनी इहिं गोकुल में विष सों बगरायो है नंद के साँवरिया॥

(९)

मो मन मोहन कों मिलिकै सबहीं मुसकानि दिखाय दई।
वह मोहनी मूरति रूपमयी सबही चितई तब हौं चितई॥
उन तौ अपने अपने घर की 'रसखानि' भली विधि राह लई।
कछु मोहि को पाप पर्‌यो पल में पग पावत पौरि पहार भई॥

(१०)

छीर जो चाहत चीर गहैं ए जु लेहु न केतक छीर अचैहौ।
चाखन के मिस माखन माँगत खाहु न माखन केतिक खैहौ॥
जानत हौं जिय की 'रसखानि' सु काहे को एतिक बात बढ़ैहौ।
गोरस के मिस जो रस चाहत सो रस कान्ह जू नैकु न पैहौ॥

(११)

भान वही जु रहैं रिझि वापर रूप वही जिहिं वाहि रिझायो।
सीस वही जिन वे परसे पद अंक वही जिन वा परसायो॥
दूध वही जु दुहायो री वाही दही सु सही जो वही ढरकायो।
और कहाँ लौं कहौं 'रसखानि' री भाव वही जु वही मनभायो॥

(१२)

संपति सों सकुचाइ कुबेरहिं रूप सों दीनी चिनौती अनंगहिं ।
भोग कै कै ललचाइ पुरन्दर जोग कै गंग कै लइ धरि संगहिं ॥
ऐसे भये तो कहा 'रसखानि' रसै रसना जो जु मुक्ति तरंगहिं ।
दै चित ताके न रंग रच्यौ जु रह्यो रचि राधिका रानी के रंगहिं ॥

(१३)

द्रौपदी औ गनिका गज गीध अजामिल सों कियो सो न निहारो ।
गौतम-गेहिनी कैसी तरी प्रहलाद को कैसे हर्‌यो दुख भारो ॥
काहे कों सोच करै 'रसखानि' कहा करिहैं रविनंद विचारो ।
ता खन जा खन राखिए माखन चाखनहारो सो राखनहारो ॥

(१४)

यह देख धतूरे के पात चबात औ गात सों धूली लगावत हैं ।
चहुँ ओर जटा अँटकैं लटकैं फनि सें फनी फहरावत हैं ॥
'रसखानि' जेई चितवै चित दै तिनके दुख दुंद भजावत हैं ।
गजखाल कपाल की माल विसाल सो गाल बजावत आवत हैं ॥

(१५)

कहा 'रसखानि' सुखसंपति सुमार कहा
कहा तन जोगी ह्वै लगाए अंग छार को ।
कहा साधे पंचानल कहा सोए बीच नल
कहा जीत लाए राज सिंधु आर पार को ॥

जप वार वार तप संजय वयार व्रत
तीरथ हजार अरे बूझत लवार को।
कीन्हो नहीं प्यार नहीं सेयो दरबार चित्त
चाह्यो न निहारो जा पै नंद के कुमार को॥

(१६)

कंचन के मंदिरनि दीठ ठहरात नाहिं
सदा दीपमाल लाल मानिक उजारै सौं।
और प्रभुताई अब कहाँ लौ बखानौं प्रति—
हारन की भीर भूप टरत न द्वारे सों॥
गंगाजी में न्हाइ मुक्ताहलहू लुटाइ वेद
बीस बार गाइ ध्यान कीजत सवारे सौं।
ऐसे ही भए तो नर कहा 'रसखानि' जो पै
चित दे न कीनी प्रीत पीतपटवारे सौं॥

बिहारीलाल

दोहे

मेरी भव-बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परैं स्यामु हरित-दुति होइ॥ १॥
नीकी दई अनाकनी फीकी परी गुहारि।
तज्यौ मनौ तारन-बिरदु बारक बारनु तारि॥ २॥
जम-करि-मुँह तरहरि पर्‌यो इहिं धरहरि चित लाउ।
बिषय-तृषा परिहरि अजौं नरहरि के गुन गाउ॥ ३॥
दीरघ साँस न लेहि दुख सुख साईंहिं न भूलि।
दई दई क्यों करतु है दई दई सु कबूलि॥ ४॥
या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोइ।
ज्यौं ज्यौं बूड़ै स्याम रँग त्यौं त्यौं उज्जलु होइ॥ ५॥
जपमाला छापा तिलक सरै न एकौ कामु।
मन-काँचै नाचै बृथा साँचै राँचै रामु॥ ६॥
बड़े न हूजै गुननु बिनु बिरद-बड़ाई पाइ।
कहत धतूरे सौं कनकु गहनौ गढ़्यो न जाइ॥ ७॥
कनकु कनक तैं सौगुनौ मादकता अधिकाइ।
उहिं खाँए बौराइ इहिं पाए हीं बौराइ॥ ८॥
जिन दिन देखे वे कुसुम गई सु बीति बहार।
अब अलि, रही गुलाब में अपत कँटीली डार॥ ९॥

सीस मुकट कटि काछनी कर मुरली उर माल।
इहिं बानक मो मन सदा बसौ विहारीलाल ॥ १० ॥

नर की अरु नल-नीर की गति एकै करि जोइ।
जेतौ नीचौ ह्वै चलै तेतौ ऊँचौ होइ ॥ ११ ॥

बढ़त-बढ़त संपति-सलिलु मन-सरोजु बढ़ि जाइ।
घटत - घटत सु न फिरि घटै बरु समूल कुम्हिलाइ ॥ १२ ॥

अति अगाधु अति औथरौ नदी कूपु सरु बाइ।
सो ताकौ सागरु जहाँ जाकी प्यास बुझाइ ॥ १३ ॥

अधर धरत हरि कैं परत ओठ डीठि पट जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी इंद्रधनुष-रँग होति ॥ १४ ॥

को कहि सकै बड़ेनु सौं लखै बड़ी यौ भूल।
दीने दई गुलाब की इन डारनु वे फूल ॥ १५ ॥

समै समै सुन्दर सबै रूपु कुरूपु न कोइ।
मन की रुचि जेती जितै तित तेती रुचि होइ ॥ १६ ॥

या भव - पारावार कौं उलँघि पार को जाइ।
तिय-छवि-छाया ग्राहिनी ग्रहै बीच हीं आइ ॥ १७ ॥

इहीं आस अटक्यौ रहतु अलि गुलाब कैं मूल।
ह्वैहैं फेरि बसंत ऋतु इन डारनु वे फूल ॥ १८ ॥

कहलाने एकत बसत अहि मयूर मृग बाघ।
जगतु तपोवन सौ कियौ दीरघ दाघ निदाघ ॥ १९ ॥

नीच हियैं हुलसे रहैं गहे गेंद के पोत।
ज्यौं ज्यौं माथे मारियत त्यौं त्यौं ऊँचे होत ॥ २० ॥

बुरो बुराई जौ तजै तौ चितु खरो डरातु।
ज्यों निकलंकु मयंकु लखि गनैं लोग उतपातु॥ २१॥
ओछे बड़े न ह्वै सकैं लगौ सतर ह्वै गैन।
दीरघ होहिं न नैंक हूँ फारि निहारैं नैन॥ २२॥
कर लै सूँघि सराहि हूँ रहे सबै गहि मौनु।
गंधी, गंध गुलाब को गँवई गाहकु कौनु॥ २३॥
इन दुखिया अँखियानु कौं सुखु सिरज्यौई नाहिं।
देखैं बनै न देखतै अनदेखैं अकुलाहिं॥ २४॥
को छूट्यो इहिं जाल परि कत कुरंग अकुलात।
ज्यौं ज्यौं सुरझि भज्यौ चहत त्यौं त्यौं उरझत जात॥ २५॥
चिरजीवौ जोरी, जुरै क्यो न सनेह गँभीर।
को घटि ए वृषभानुजा वे हलधर के बीर॥ २६॥
ज्यौं ह्वैहौं त्यों होउँगो हौं हरि अपनी चाल।
हठु न करौ अति कठिनु है मो तारिबौ गोपाल॥ २७॥

भूषण

काली कपर्दिनी

जै जयति, जै आदि सकति, जै कालि कपर्दिनि;
जै मधुकैटभ-छलनि, देवि, जै महिष-विमर्दिनि।
जै चमुंड जै चंड-मुंड-भंडासुर-खंडिनि;
जै सुरक्त जै रक्तबीज-बिड्डाल-बिहंडिनि।
जै-जै निसुंभ-सुंभद्दलनि, भनि 'भूषन' जै-जै भननि;
सरजा समत्थ सिवराज कहँ, देहि बिजै, जै जग-जननि॥

छत्रसाल की तलवार

निकसत म्यान तें मयूखैं प्रलैभानु की-सी,
फारैं तमतोम से गयन्दन के जाल को।
लागति लपटि कँठ बैरिन के नागिनी-सी,
रुद्रहि रिझावै दै दै मुंडन की माल को॥
लाल छितिपाल छत्रसाल महाबाहु बली,
कहाँ लौं बखान करौं तेरी करवाल को।
प्रतिभट कटक कटीले केते काटि काटि,
कालिका-सी किलकि कलेऊ देती काल को॥

शिवाजी की प्रशंसा

(१)

इंद्र जिमि जंभ पर, बाड़व सु अंभ पर,
रावण सदंभ पर रघुकुल-राज है।
पौन बारिबाह पर, संभु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्रबाह पर राम द्विजराज है॥
दावा द्रुम-दंड पर, चीता मृग-झुंड पर,
'भूषन' वितुंड पर जैसे मृगराज है।
तेज तम-अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलिच्छ-बंस पर सेर सिवराज है॥

(२)

एक कहैं कलपद्रुम है, इमि पूरत है सबकी चित-चाहै,
एक कहैं अवतार मनोज को, यों तन में अति सुंदरता है।
'भूषन' एक कहैं महि-इंदु यों, राज बिराजत बाढ़्यो महा है,
एक कहैं नरसिंह है संगर, एक कहैं नरसिंह सिवा है॥

(३)

तो कर सों छिति छाजत दान है, दानहू सों अति तो कर छाजै।
तैं ही गुनी की बड़ाई सजै, अरु तेरी बड़ाई गुनी सब साजै॥
'भूषन' तोहि सों राज बिराजत, राज सों तू सिवराज, बिराजै।
तो बल सों गढ़-कोट गजैं, अरु तू गढ़-कोटन के बल गाजै॥

(४)

इंद्र निज हेरत फिरत गज-इंद्र अरु
इंद्र को अनुज हेरै दुगधि-नदीस को।
'भूषन' भनत सुरसरिता को हंस हेरै
विधि हेरैं हंस को चकोर रजनीस को॥
साहि-तनै सिवराज करनी करी है तैं जु,
होत है अचंभो देव कोटियो तैंतीस को।
पावत न हेरे तेरे जस में हिराने निज
गिरि को गिरीस हेरैं गिरिजा गिरीस को॥

(५)

चित्त अनचैन, आँसू उमगत नैन, देखि
बीबी कहै बैन, मियाँ, कहियत काहिनै?
'भूषन' भनत बूझे आए दरबार ते
कँपत बार-बार क्यों सँभार तन नाहिनै?
सीनो धकधकत, पसीनो आयो देह सब
हीनो भयो रूप न चितौत बाएँ-दाहिनै।
सिवाजी की संक मानि गए हौ सुखाय, तुम्हैं
जानियत दक्खिन को सूबा करो साहिनै।

(६)

साजि चतुरंग बीर-रंग मैं तुरंग चढ़ि,
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है।

'भूषन' भनत नाद बिहद नगारन के,
नदी नद मद गब्बरन के रलत है॥
ऐल-फैल खैल भैल खलक में गैल-गैल;
गजन की ठेल-पेल सैल उसलत है।
तारा-सो तरनि धूरि-धारा में लगत जिमि,
थारा पर पारा पारावार यो हलत है॥

(७)

कत्ता की कराकनि चकत्ता को कटक काटि,
कीन्ही सिवराज बीर अकह कहानियाँ।
'भूषन' भनत तिहुँ लोक में तिहारी धाक,
दिल्ली औ बिलाइति सकल बिललानियाँ॥
आगरे अगारन ह्वै फाँदती कगारन छ्वै,
बाँधती न बारन, मुखन कुम्हिलानियाँ।
कीबी कहै कहा औ गरीबी गहे भागी जाहिं,
बीबी गहे सूथनी सु नीबी गहे रानियाँ॥

(८)

केतिक देस दल्यौ दल के बल, दच्छिन चंगुल चापिकै चाख्यो।
रूप-गुमान हर्‌यो गुजरात को, सूरति को रस चूसिकै नाख्यो॥
पंजन पेलि मलिच्छ मल्यौ सब, सोइ बच्यो, जेहि दीन ह्वै भाख्यो।
सो रँग है सिवराज बली, जेहि नौरँग में रँग एक न राख्यो॥

(९)

चकित चकत्ता चौंकि-चौंकि उठै बार-बार,
दिल्ली दहसति चितै चाह खरकति है।
बिलखि बदन बिलखात बिजैपुर-पति,
फिरत फिरंगिन की नारी फरकति है॥
थरथर काँपत कुतुबसाहि गोलकुँडा,
हहरि हबस-भूप भीर भरकति है॥
राजा सिवराज के नगारन की धाक सुनि,
केते पातसाहन की छाती दरकति है॥

(१०)

बेद राखे बिदित पुरान राखे सारजुत,
राम-नाम राख्यो अति रसना सुघर में।
हिन्दुन की चोटी, रोटी राखि है सिपाहिन की,
काँधे में जनेउ राख्यो, माला राखी गर में।
मीड़ि राखे मुगुल, मरोरि राखे पातसाह,
बैरी पीसि राखे, बरदान राख्यो कर में॥
राजन की हद्द राखी तेग-बल सिवराज,
देव राखे देवल, स्वधर्म राख्यो घर में॥

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

गंगा-गरिमा

नव उज्ज्वल जलधार, हार हीरक-सी सोहति।
बिच-बिच छहरति बूँद मध्य मुक्ता-मनि पोहति॥
लोल लहर लहि पवन एक पैं इक इमि आवत।
जिमि नर-गन मन विविध मनोरथ करत मिटावत॥
सुभग-स्वर्ग-सोपान-सरिस सबके मन भावत।
दरसन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत॥
श्रीहरिपद-नख-चंद्रकांत-मनि-द्रवित सुधारस।
ब्रह्म-कमंडल-मंडन, भव-खंडन सुर-सरबस॥
शिव-सिर-मालति-माल, भगीरथ-नृपति-पुन्य-फल।
ऐरावत-गज गिरि-पति-हिम-नग-कंठहार कल॥
सगर-सुवन सठ सहस परस जल मात्र उधारण।
अगिनित धारा रूप धारि सागर संचारण॥
कासी कहँ प्रिय जानि ललकि भेंट्यो जग धाई।
सपने हू नहिं तजी, रही अंकम लपटाई॥
कहूँ बँधे नव घाट उच्च गिरिवर-सम सोहत।
कहुँ छतरी, कहुँ मढ़ी, बढ़ी मन मोहत जोहत॥
धवल धाम चहुँ ओर फरहरत धुजा पताका।
घहरत घंटा धुनि धमकत धौंसा करि साका॥

मधुरी नौबत बजत, कहूँ नारी-नर गावत।
वेद पढ़त कहुँ द्विज, कहुँ जोगी ध्यान लगावत॥
कहुँ सुंदरि नहात वारि कर-जुगल उछारत।
जुग अंबुज मिलि मुक्तगुच्छ मनु सुच्छ निकारत॥
धोवत सुंदरि बदन करन अति ही छबि पावत।
वारिधि नाते ससि कलंक मनु कमल मिटावत॥
सुंदरि ससि मुख नीर मध्य इमि सुंदर सोहत।
कमलबेलि लहलही नवल कुसुमन मन मोहत॥
दीठि जहाँ जहँ जात रहत तितही ठहराई।
गंगा-छबि 'हरिचंद' कछू बरनी नहि जाई॥

पावस-मसान

चपला की चमक चहूँघा सों लगाई चिता
चिनगी चिलक पटबीजना चलायो है।
हेती बगमाल स्याम बादर सु भूमि कारी
बीरबधू लहू-बूँद भुव लपटायो है॥
'हरीचंद' नीर-धार आँसू-सी परत जहाँ
दादुर को सोर रोर दुखिन मचायो है।
दाहन बियोग दुखियान को मरे हूँ यह
देखो पापी पावस मसान बनि आयो है॥

नारद की वीणा

(१)

पिंग जटा को भार सीस पै सुंदर सोहत।
गल तुलसी की माल बनी जोहत मन मोहत॥
कटि मृगपति को चरम चरन में घुँघरू धारत।
नारायण गोविंद कृष्ण यह नाम उचारत॥
लै वीना कर वादन करत तान सात सुर सों भरत।
जग अघ छिन में हरि कहि हरत जेहि सुनि नर भवजल तरत॥

(२)

जुग तूँबन की बीन परम सोभित मनभाई।
लय अरु सुर की मनहुँ जुगल गठरी लटकाई॥
आरोहन अवरोहन के कै द्वै फल सोहैं।
कै कोमल अरु तीव्र सुर भरे जग-मन मोहैं॥
कै श्रीराधा अरु कृष्ण के अगनित गुन गन के प्रगट।
यह अगम खजाने द्वै भरे नित खरचत तो हूँ अघट॥

(३)

मनु तीरथमय कृष्णचरित की काँवरि लीने।
कै भूगोल खगोल दोउ कर-अमलक कीने॥
जग-बुधि तौलन हेत मनहुँ यह तुला बनाई।
भक्ति-मुक्ति की जुगल पिटारी कै लटकाई॥
मनु गावन सों श्रीराग के वीना हू फलती भई।
कै राग-सिंधु के तरन हित यह दोऊ तूँबी लई॥

(४)

ब्रह्म-जीव, निरगुन-सगुन, द्वैताद्वैत विचार।
नित्य-अनित्य विवाद के, द्वै तूँवा निरधार॥
जो इक तूँवा लै कढ़ै, सो वैरागी होय।
क्यों नहि ये सबसों बढ़ै, लै तूँवा कर दोय॥

वह छवि

नैना वह छवि नाहिंन भूले।
दया-भरी चहुँ दिसि की चितवनि नैन कमल-दल फूले॥
वह आवनि वह हँसनि छबीली वह मुसकनि चित चोरैं।
वह बतरानि मुरनि हरि की वह वह देखन चहुँ कोरैं॥
वह धीरी गति कमल फिरावन कर लै गायन पाछे।
वह बीरी मुख बेनु बजावनि पीत पिछौरी काछे॥
परवस भए फिरत हैं नैना इक छन टरत न टारे।
हरि-ससि-मुख ऐसी छबि निरखत तन मन धन सब हारे॥

यमुना-वर्णन

(१)

तरनि-तनूजा-तट तमाल तरुवर बहु छाए।
झुके कूल सों जल-परसन-हित मनहुँ सुहाए॥

किधौं मुकुर में लखत उझकि सब निज-निज सोभा।
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा॥
मनु आतप बारन तीर कों सिमिटि सबै छाए रहत।
कै हरि-सेवा-हित नै रहे निरखि नैन मन सुख लहत॥

(२)

कहूँ तीर पर कमल अमल सोभित बहु भाँतिन।
कहुँ सैवालन मध्य कुमुदिनी लगि रहि पाँतिन॥
मनु दृग धारि अनेक जमुन निरखत ब्रज-सोभा।
कै उमगे पिय प्रिया प्रेम के अनगिन गोभा॥
कै करिकै कर बहु पीय कों टेरत निज ढिग सोहई।
कै पूजन को उपचार लै चलति मिलन मन मोहई॥

(३)

कै पियपद उपमान जानि एहि निज उर धारत।
कै मुख करि बहु भृंगन मिस अस्तुति उचारत॥
कै ब्रज-तियगन-बदन-कमल की झलकत झाईं।
कै ब्रज हरिपद-परस हेत कमला बहु आईं॥
कै सात्त्विक अरु अनुराग दोउ ब्रजमंडल बगरे फिरत।
कै जानि लच्छमी-भौन एहि करि सतधा निज जल धरत॥

(४)

तिनपैं जेहि छिन चंद-जोति राका निसि आवति।
जल मे मिलिकै नभ अवनी लौं तान तनावति॥

होत मुकुरमय सबै तबै उज्जल इक ओभा।
तन मन नैन जुड़ावत देखि सुंदर सो सोभा॥
सो को कवि जो छवि कहि सकै ता छन जमुना-नीर की।
मिलि अवनि और अंबर रहत छवि इक-सी नभ-तीर की॥

(५)

परत चंद्र-प्रतिबिंब कहूँ जल मधि चमकायो।
लोल लहर लहि नचत कबहुँ सोई मन भायो॥
मनु हरि-दरसन हेत चंद जल बसत सुहायो।
कै तरंग कर मुकुर लिए सोभित छवि छायो॥
कै रास-रमन मे हरि-मुकुट-आभा जल दिखरात है।
कै जल-उर हरि-मूरति बसत, ता-प्रतिबिंब लखात है॥

(६)

कबहुँ होत सत चंद कबहुँ प्रगटत दुरि भाजत।
पवन गवन बस बिंब-रूप जल में बहु साजत॥
मनु ससि भरि अनुराग जमुन-जल लोटत डोलै।
कै तरंग की डोर हिंडोरन करत कलोलै॥
कै बालगुड़ी नभ में उड़ी सोहत इत-उत धावती।
कै अवगाहत डोलत कोऊ ब्रज-रमनी जल आवती॥

(७)

मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत मिटि जात जमुन-जल।
कै तारागन ठगन लुकत प्रगटत ससि अविकल॥

कै कालिंदी नीर तरंग जितो उपजावत।
तितनो ही धरि रूप मिलन हित तासों धावत॥
कै बहुत रजत चकई चलत, कै फुहार-जल उच्छरत।
कै निसिपति मल्ल अनेक विधि उठि बैठत कसरत करत॥

(८)

कूजत कहुँ कलहंस कहूँ मज्जत पारावत।
कहुँ कारंडव उड़त कहूँ जल-कुक्कुट धावत॥
चक्रवाक कहुँ वसत कहूँ वक ध्यान लगावत।
सुक-पिक जल कहुँ पियत कहूँ भ्रमरावलि गावत॥
कहुँ तट पर नाचत मोर बहु रोर विविध पच्छी करत।
जलपान न्हान करि सुख भरे तट सोभा सब जिय धरत॥

(९)

कहुँ बालुका विमल सकल कोमल बहु छाई।
उज्जल झलकत, रजत सीढ़ि मनु सरस सुहाई॥
पियके आगम हेत पाँवड़े मनहुँ विछाए।
रतन-रासि करि चूर कूल में मनु बगराए॥
मनु मुक्त माँग सोभित भरी, श्यामनीर चिकुरन परसि।
सतगुन छायो कै तीर में, व्रज निवास लखि हिय हरसि॥

प्रेम-महिमा

सब मिलि गाओ प्रेमबधाई।
यह संसार रतन इक प्रेमहिं और बादि चतुराई।
प्रेम बिना फीकी सब बातैं कहहु न लाख बनाई।
जोग ध्यान जप तप व्रत पूजा प्रेम बिना बिनसाई॥
हाव भाव रस रंग रीति बहु काव्य केलि कुसलाई।
बिना लोन बिंजन सो सब ही प्रेम-रहित दरसाई॥
प्रेमहि सो हरि हू प्रगटत हैं जदपि ब्रह्म जगराई।
तासों यह जग प्रेमसार है और न आन उपाई॥

श्रीधर पाठक

काश्मीर-सुखमा

धनि धनि श्रीकश्मीर-धरनि मन-हरनि सुहावनि,
धनि कश्यप-जस-धुजा, विश्वमोहिनि मनभावनि।
धन्य आर्य-कुल-धर्म-पर्म-प्राचीन-पीठ-थल,
धन्य सारदा-सवनि अवनि, त्रैलोक्य-पुन्य-फल।
धन्य पुरातन प्रथित धाम, अभिराम अतुल-छवि,
स्वर्ग-सहोदरि धरनि, बरनि हारे कोविद कवि॥

धन्य यहाँ की धूलि, धन्य नीरद, नभ, तारे,
धन्य धवल हिमशृंग, तुङ्ग दुर्गम दृग-प्यारे।
धन्य नदी नद-स्रोत, विमल गंगोद-गोत जल,
सीतल सुखद समीर, वितस्ता-तीर स्वच्छ-थल।
धनि उपवन, उद्यान, सुमन-सुरभित वनवीथी,
खिलि रहीं चित्र विचित्र, प्रकृति के हाथनु चीती।
धन्य सुथर गिरिचरन सरित-निर्झर-रव-पूरित,
लघु दीरघ तरु विहग-बोल, कोकिल कल कूजित।
मृदुल दूब-दल-रचित कुसुम-भूषित सुचि शाद्वल,
ललित लतावलि-वलित कलित कमनीय सलिल-थल।
धनि सुखमा-सुख-मूल सरित-सर-कूल मनोहर,
धनि सागर-सम-तूल विमल विस्तृत 'डल वूलर'।

मानसरोवर - मान - हरन सुन्दर 'मानस बल',
धनि 'गंधर बल,' 'गगरी बल,' श्रीनगर स्वच्छ 'डल'।
एक एक सों सुघर अनेक सरोवर छाए,
प्रकृति देव निज-रूप-लखन मनु मुकुर लगाए॥

धन्य नगर श्रीनगर वितस्ता-कूलनि सोहै,
पुलिन-भौन-प्रतिबिम्ब सलिल-सोभा मन मोहै।
लसत 'कदल' पुल सप्त, चपल नौकागन डोलैं,
रूपरासि नर-नारि बारि बिच करत कलोलैं।
धन्य राजप्रिय प्रजा, प्रजाप्रिय राज सुखारी,
धनि पुनीत नृपनीति प्रीतिपथ-पोषनहारी।
यवन आर्य बिच न्याय-मध्य कछु भेद न दीसत,
सोवत सुख की नींद सबै निज-नृपहि असीसत।
धन्य भिन्न मत प्रजा मध्य यह भेद-अभावा,
विमल न्याय, नय, सुमति, सील, बल, बुद्धि प्रभावा॥

प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप सँवारति,
पल-पल पलटति भेस छनिक छवि छिन-छिन धारति।
विमल-अम्बु-सर मुकुरन महँ मुख-बिंब निहारति,
अपनी छवि पै मोहि आप ही तन मन वारति।
सजति सजावति सरसति हरसति दरसति प्यारी,
बहुरि सराहति भाग पाय सुठि चित्तरसारी।
विहरति विविध-विलास-भरी जोबन के मद सनि
ललकति किलकति पुलकति निरखति थिरकति बनि ठनि।

मधुर मंजु छवि पुंज छटा छिरकति वन कुंजन,
चितवति रिझवति हसति डसति मुसिक्याति हरति मन ।।

यहँ सुरूप सिंगार रूप धरि धरि बहु भाँतिन,
सर, सरिता, गिरि, सिखर, गगन, गह्वर, तरुवर, तृन।
पूरन करिवे काज कामना अपने मन की
किंकरता करि रह्यो प्रकृति-पंकज-चरनन की।
चहुँ दिसि हिम गिरि-सिखर हीर-मनि मौलि-अवलि मनु
स्रवत सरित-सित-धार द्रवत सोइ चन्द्रहार जनु।
फल फूलन छवि छटा छई जो वन उपवन की,
उदित भई मनु अवनि-उदर सों, निधि रतनन की।
तुहिन-सिखर, सरिता, सर, विपिनन की मिलि सो छवि,
छई मंडलाकार, रही चारहुँ दिसि यों फबि।
मानहुँ मनिमय मौलि-माल-आकृति अलबेली,
बाँधी विधि अनमोल गोल भारत-सिर सेली।
अर्द्धचन्द्र सम सिखर-स्रेनि कहुँ यों छवि छाई,
मानहुँ चन्दन-खौरि गौरि-गुरु खौरि लगाई।
पुनि तिन स्रेनिन बीच वितस्ता रेख जु राजति,
वैष्णव "श्री" अरु शिव-त्रिशूल की आभा भ्राजति ।।

हिम स्रेनिन सों घिर्‌यौ अद्रिमंडल यह रूरौ,
सोहत द्रोनाकार सृष्टि-सुखमा-सुख-पूरौ।
बहु विधि दृश्य अदृश्य कला कौशल सों छायौ,

रच्छन निधि नैसर्ग मनहु विधि दुर्ग बनायौ।
अथवा विमल बटोर विश्व की निखिल निकाई,
गुप्त राखिबे काज सुदृढ़ संदूक बनाई।
कै यह जादूभरी विश्व-बाजीगर-थैली,
खेलत में खुलि परी शैल के सिर पै फैली॥

सुरपुर अरु सुरकानन की सुठि सुन्दरताई,
त्रिभुवन-मोहन-करनि कवितु बहु बरनि सुनाई।
सो सब कानन सुनी, किन्तु नैनन नहीं देखी,
जहँ तहँ पोथिन पढ़ी पैसु परतच्छ न पेखी।
सो कवियन जो कही कलित सुरलोक-निकाई,
याही कों अवलोकि एक कल्पना बनाई॥

सुरपुर अरु कश्मीर दोउन में को है सुन्दर,
को सोभा कौ भौन रूप को कौन समुन्दर?
काकौं उपमा उचित दैन दोउन में काकी,
याकौं सुरपुर की अथवा सुरपुर कौं याकी?
याकौं उपमा याही की मोहि देत सुहावै,
या सम दूजौ ठौर सृष्टि में दृष्टि न आवै।
यहो स्वर्ग सुरलोक यही सुरकानन सुंदर,
यहि अमरन को ओक यहीं कहुँ बसत पुरन्दर॥

सो 'श्रीधर'-दृग बसौ प्रेम-अम्बुद-रसदैनी,
पुन्यअवनि सुखसवनि अलौकिक-सोभा-सैनी

पैसु यथारथ महिमा नहिं मोहि शक्ति बखानन,
सहसा नहिं कहि सकहिं रुकहिं सहसन सहसानन।
कविगन कौं कल्पना-कल्प-तरु, काम-धेनु-सी,
मुनियन कौं तपधाम, ब्रह्म-आनंद-ऐनु-सी।
रसिकन कौं रसथान, प्रान, सर्वस, जीवन, धन,
प्रकृति प्रेमिनी कौं सुकेलि-क्रीड़ा-कलोल-बन।
ताहि रसिकवर सुजन अवसि अवलोकन कीजै,
मम समान मन-मुग्ध ललकि लोचन-फल लीजै॥

कायर

जो जग के सब कार्य स्वार्थ के गज से नापै,
सबमें निज-सम सदा स्वार्थ-परता ही भाँपै।
पर-हित की चर्चा पर भी डर करके काँपै,
वहाँ कभी ना जाय भद्रजन जुड़ें जहाँ पै।
हा! ऐसे कायर से भला क्या कोई पुरुषार्थ हो,
हों ऐसे सब जिस जाति में वह किस भाँति कृतार्थ हो॥

हिमालय

उत्तर दिसि नगराज अटल-छवि-सहित विराजत
लसत स्वेत सिर मुकुट, झलक-हिम-सोभा भ्राजत।
वदन देस सविसेस कनक-आभा आभासत
अधोभाग को स्याम-वरन छवि हृदय हुलासत॥१॥

स्वेत-पीत सँग स्याम धार अनुगत सम अन्तर
सोहत त्रिगुन त्रिदेव त्रिजग प्रतिभास निरन्तर।
विलसत सो तिहुँ काल त्रिविध सुठि रेख अनूपम
भारतवर्ष-विशाल-भाल-भूषित त्रिपुंड्र सम॥ २॥

उज्ज्वल ऊँचे सिखर दूर देसन लौं चमकत
परत भानु-नव-किरन प्रात, सुवरन सम दमकत।
लता पुहुप वन-राजि सदा ऋतुराज सुहावत
हरी-भरी, डहडही वृच्छ-माला मन भावत॥ ३॥

कोकिल-कीर कदंब-अंब चढ़ि गान सुनावत
स्यामा चारु सुगीत मधुर-सुर पुनि-पुनि गावत।
कहुँ हारीत कपोत, कहूँ मैना लखि परियत
कहुँ कहुँ खेचर-वर चकोर के दरसन करियत॥ ४॥

देवदार की डार कहूँ लंगूर हिलावत
कहुँ मरकट को कटक वेग सों तरु-तरु धावत।
विकसित नित नव कुसुम तरुन, तरु मुकुलित बौरत
अलवेले अलिवृन्द कलिन के ढिंग-ढिंग भौंरत॥ ५॥

झरना जहँ-तहँ झरत, करत कल छर-छर जल रव,
पियत जीव सो अंबु अमृत-उपमा हिम-संभव।
पवन सीत अति सुखद बुझावत वहु विधि तापा
बादर दरसत, परसत, बरसत आपहि आपा॥ ६॥

गंगा गोमुख स्रवत कहै को सोभा ताकी ?
बरनै जन्मस्थली वह कि, अथवा जमुना की ?
सतलज, ब्यास, चिनाब प्रभृति पंजाब पंच-जल,
सरजू आदि अनेकन नदियन कौ निसरन-थल ॥ ७ ॥

पृष्ठभाग रमनीक रुचिर राजत रावन-ह्रद
गहन करत निज देह सिंध अरु ब्रह्मपुत्र नद।
हरिद्वार, केदार, बदरिकाश्रम की सोभा
लखि ऐसौ को मनुज, जासु मन कबहुँ न लोभा ? ॥ ८ ॥

पुनि देखिय कसमीर देस, नैपाल तराई
सिकम और भूटान राज्य आसाम लगाई।
दच्छिन भुज अफगान-राज-मस्तक सों भेंटत
बाम बाहु सों बरमा के कच-भार समेटत ॥ ९ ॥

ज्यों समर्थ बलवान सुभावहिं सों उदार-मन
देत अभय-बर-दान मान-युत निज आश्रित-गन।
आर्यावर्त्त पुनीत ललकि हिय भरि आलिंगत
गंगा जमुना अश्रु प्रेम प्रगटत हृदयंगत ॥१०॥

रूरे-रूरे गाम अधिक अंतर सों सोहत
रूपवती पर्वती सती जुवती मन मोहत।
अगनित पर्वत-खंड चहूँ दिसि देत दिखाई
सिर परसत आकास, चरन पाताल छुआई ॥११॥

सोहत सुन्दर खेत-पाँति तर ऊपर छाई
मानहु त्रिदिव पट हरित स्वर्ग-सोपान बिछाई।
गहरे गहरे गर्त्त खड्ड दीरघ गहराई
सब्द करत हाँ घोर प्रतिध्वनि देत सुनाई ॥१२॥

तहँ निपट निरसंक वन्य पसु सुख सों बिचरत
करत केलि कल्लोल, मुदित आनन्दित विहरत।
कहुँ ईंधन को ढेर सिद्ध-आवास जनावत
कहूँ समाधि-स्थित जोगी की गुहा सुहावत ॥१३॥

विविध विलच्छन दृश्य सृष्टि-सुखमा-सुख-मंडल
नंदन-वन-अनुरूप-भूमि-अभिनय-रंगस्थल।
प्रकृति-परम-चातुर्य अनूपम-अचरज-आलय
'श्रीधर' दृग छकि रहत अटल-छबि निरखि हिमालय ॥१४॥

वन-शोभा

चारु हिमाचल-आँचल में एक साल बिसालन को बन है।
मृदु मर्मर शील झरैं जल स्रोत हैं पर्वत-ओट है निर्जन है।
लिपटे हैं लता-द्रुम, गान में लीन प्रवीन विहंगन को गन है।
भटक्यौ तहँ रावरौ भूल्यौ फिरै मद बावरौ सो अलि को मन है॥
काली घटा का घमंड घटा, नभमंडल तारका-वृंद खिले।
उजियाली निशा, छविशाली दिशा अति सोहैं धरातल फूले फले॥

निखरे सुथरे वन-पंथ खुले तरु-पल्लव चन्द्रकला से धुले।
वन शारदी-चन्द्रिका-चादर ओढ़ें लसैं समलंकृत कैसे भले॥

भारत में वन! पावन तू ही तपस्वियों का तप-आश्रम था।
जग-तत्त्व की खोज में लग्न जहाँ ऋषियों ने अभग्न किया श्रम था॥
जब प्राकृत विश्वका विभ्रम और था, सात्त्विक जीवन का क्रम था।
महिमा वन-वास की थी तब और प्रभाव पवित्र अनूपम था॥

वृन्दावन

नैन किन वृन्दावन-छवि देखहु।
निरखि नित्य-लीला-विहार किन जन्म सुफल करि लेखहु॥
जो चाहै निरखन या छवि कौं है अनन्य-मन प्रानी।
जुगल रूप तिहिं देय दरस प्रभु प्रेमी जन निज जानी॥
जाहि देखि फिर कछु देखन की चाह न मन रहि जाई।
सो रस-रास-विलास-भूमि श्रीवृंदा-विपिन सुहाई॥
यह देखहु वृषभान-सुता सँग सोहत कुँवर कन्हाई।
बंसीवट के निकट मधुर सुर बंसी रहे बजाई॥
सोई गोपी, सोइ धेनु, वेनु-धुनि सुनि तन-मन बिसराई।
चित्र-लिखित-सी रहीं चकित ह्वै मनहुं ठगौरी खाई॥
कृष्ण-कृपा लहि भइ कृष्ण-मय कृष्ण-प्रेम-पद पाई।
तजि धन धाम गाम कामिनि रहीं कृष्ण-नाम-गुन गाई॥

नाथूराम शंकर शर्मा

प्रबोध-पूर्णिमा

जो संसार-सुधार में रहते हैं अनुरक्त।
वे अमोघ आदर्श हैं जगदुन्नति के भक्त ॥ १ ॥
जो मन वाणी कर्म से सबका करें सुधार।
वे बड़भागी धन्य हैं सुकृती परमोदार ॥ २ ॥
जो जीवन के अंत लों करता रहा सुकर्म।
धन्य उसी का मित्र है सत्य सनातन धर्म ॥ ३ ॥
जो सुकृती संसार का करते हैं उपकार।
पूजें उनको प्रेम से सभ्य, कृतज्ञ उदार ॥ ४ ॥
कर लेता है शुद्ध जो जब आचार-विचार।
सत्य सुझाता है उसे तब संसार असार ॥ ५ ॥
धर्मशील माता-पिता अतिथि और आचार्य।
इनकी पूजा प्रेम से करते रहें सदार्य ॥ ६ ॥
मर्म जनावे धर्म का जिसका अनुसंधान।
पूजें उस मस्तिष्क को वैदिक देव सुजान ॥ ७ ॥
मान मित्रता का करो प्रेम पवित्र पसार।
मित्र-मंडली से मिलो छल कापट्य बिसार ॥ ८ ॥
दीनों को सुख-दान दो समझो इसे न पाप।
क्या लोगे यदि हो गए उनसे दुखिया आप ॥ ९ ॥

सुख भोगें दानी धनी उन्नति का मुख चूम।
धर जाते हैं और को जोड़-जोड़ धन सूम॥ १०॥
जन्म-भूमि का देश का हो न जिसे अभिमान।
ऐसे ऊत उतार को मानो मृतक-समान॥ ११॥
वीर, बड़ाई लोक में करो न अपनी आप।
श्रोता समझेंगे उसे केवल पोच-प्रलाप॥ १२॥
निन्दा करो न और की है यह निन्दित कर्म।
निन्दक, जानोगे नहीं मनुज-धर्म का मर्म॥ १३॥
पोच पापियों से घृणा करना समझो पाप।
धर्माधार सुधार से सुधरो अपने-आप॥ १४॥
प्यारे, अब के काम को फिर के लिये न छोड़।
चार फलों का साहसी पीले स्वरस निचोड़॥ १५॥

स्फुट पद्य

शंकर नदी नद नदीसन के नीरन की,
भाप बन अंबर तें ऊँची चढ़ जायगी।
दोनों ध्रुव छोरन लौं पल में पिघलकर,
घूम घूम धरनी धुरी-सी बढ़ जायगी॥
झारेंगे अँगारे ये तरनि तारे तारापति,
जारेंगे खमंडल में आग मढ़ जायगी।
काहू विधि विधि की बनावट बचेगी नाहिं,
जो पै वा वियोगिन की आह कढ़ जायगी॥

जगन्नाथदास रत्नाकर

कलकाशी

परम रम्य सुखरासि कासिका पुरी सुहावनि।
सुर-नर-मुनि-गन्धर्व-यच्छ-किन्नर-मन-भावनि॥
संभु सदासिव बिस्वनाथ की अति प्रिय नगरी।
बेद-पुरानिनि माँहिं गनित गुनगन में अगरी॥ १॥

तीन लोक दस-चार भुवन तैं निपट निराली।
निज त्रिसूल पर धारि संभु जो जुग-जुग पाली॥
जाके कंकर में प्रभाव संकर को राजै।
जम-किंकर जिहिं जानि भयंकर दूरहि भाजै॥ २॥

जामैं तजत सरीर पीर जग जनम-मरन की।
छूटति छिनहिं प्रयास त्रास जम-पास परन की॥
जामैं धारत पाय हाय करि कूटत छाती।
पातक-पुंज परात गात के जनम सँघाती॥ ३॥

सुचि सुरराज-समाज जाहि सेवन कौं तरसत।
दरस परस लहि सरस आँस आनँद के बरसत॥
ब्रह्मा बिष्नु महेस सेस निज वैभव भूले।
धरि धरि वेस असेस जहाँ विचरत सुख फूले॥ ४॥

सुठि सुढार त्रिपुरारि पिनाकाकार बसी है।
उत्तर बरुना औ दक्खिन कौ कोट असी है॥

उत्तर-बाहिनि गंग प्रतिचा प्राची दिसि बर।
उन्नत मंदिर मंजु सिखर जुत लसत प्रखर सर ॥ ५ ॥

बम-बम की हुंकार धनुप-टंकार पसारै।
जाकौ धमक-प्रहार पापगिरि-हार बिदारै ॥
जिहि पिनाक की धाक धरामंडल में मंडित।
जासौं होत त्रिताप-दाप त्रिपुरासुर खंडित ॥ ६ ॥

घेरी उपवन बाग बाटिकनि सौं सुठि सोहै।
ज्यौं नंदन-बन बीच बस्यौ सुरपुर मन मोहै ॥
बापी कूप तड़ाग जहाँ तहँ बिमल बिराजैं।
भरे सुधा सम सलिल रसिकजन हिय लौं भ्राजैं ॥ ७ ॥

धवल धाम अभिराम अमित अति उन्नत सोहैं।
निज सोभा सौं बेगि बिस्वकर्मा मन मोहैं ॥
ध्वजा पताका तोरन सौं बहु भाँति सजाए।
चित्रित चित्र बिचित्र द्वार पर कलस धराए ॥ ८ ॥

हाट बाट घर घाट घने अति बिसद बिराजैं।
गुदड़ी गोला गंज चारु चौहट्ट छबि छाजैं ॥
नीकी निपट नखास सुघर सट्टी सब सोहैं।
कल कटरा वर बार मंजु मंडी मन मोहैं ॥ ९ ॥

चारहु बरन पुनीत नीतजुत बसत सयाने।
सुंदर सुघर सुसील स्वच्छ सदगुन सरसाने ॥
जातिधर्म कुलधर्म मर्म के जाननिहारे।
मर्यादा-अनुसार सकल आचार सुधारे ॥ १० ॥

सब बिधि सबहिं सुपास सुलभ कासी-बासिनि कौं।
निज-निज रुचि अनुसार लहहिं सब सुख-रासिनि कौं॥
असन बसन बर बाम धाम अभिराम मनोहर।
ज्ञान गान गुन मान सकल सामग्री धर॥ ११॥
कहुँ सज्जन द्वै चार चारु हरि-जस-रस राँचे।
पुलकित तन मन मुदित सील सद्गुन के साँचे॥
भक्तिभाव भरपूर धूर भव-बिभव बिचारे।
भगवत-लीला-ललित-मधुर-मदिरा-मतवारे॥ १२॥
कहुँ परम्हंस प्रसंस बंस मन-मानसचारी।
जीवन मुक्ति महान मंजु मुकता अधिकारी॥
उज्ज्वल प्रकृति प्रवीन हीन-भव-पंक पच्छधर।
जगज्जाल-जंजाल-गहन-बन अगम पारकर॥ १३॥
कहुँ पंडित सु उदार बुद्धि-धर गुन-गन-मंडित।
सास्त्र सस्त्र संग्राम करन सुरगुरु-मद खंडित॥
बिद्या-बारिधि मथन माहि मंदर अति नीके।
कठिन करारे बेद बिदित ब्यौहार नदी के॥ १४॥
दलन बिपच्छिनि-पच्छ माहिं अति दच्छ राम से।
नैयायिक अति निपुन बेद-बेदांत धाम से॥
षट सास्त्रनि कौ गूढ़ ज्ञानधर सिवकुमार से।
वैयाकरन बिदग्ध सुमति बारिधि अपार से॥ १५॥
सिष्य पाँति कौं गूढ़ग्रंथ बहु भाँति पढ़ावत।
अन्वयार्थ सब्दार्थ भरे भावार्थ बतावत॥

धर्म कर्म व्यवहार विपय जो पूछन आवैं।
तिनकौं करहिं अबोध भली विधि बोध बढ़ावैं॥ १६॥
हरि-कीर्तन की कहूँ मंडली सुघर सुहाई।
हरि-हर-गुन-गन-गान वितान तनति सुखदाई॥
काम क्रोध मद मोह दनुजदल दलन सदाहीं।
रामचंद्र से बचन-बान साधक जिहिं माहीं॥ १७॥
लसत धाम अभिराम दिव्य गोमय सौं लीपे।
कुंकुम चंदन चारु चून ऐपन सौं टीपे॥
तिल तंदुल यव पात्र घने घृत भांड भराए।
असन बसन साहित्य सकल जिन माहिं धराए॥ १८॥
कहुँ पाँति की पाँति विप्रगन सहज सुभाए।
कलित कुसासन पै बैठे मन मोद मढ़ाए॥
सुंदर गोरे गात बस्त्र उपवस्त्र सँवारे।
सिखा सूत्र औ भस्म रीतिजुत अंगनि धारे॥ १९॥
कहूँ साधु संतनि के सोहत सुभग अखारे।
घंटा संख मृदंग बजत जहँ साँझ सकारे॥
होति आरती पूज्य देव गुरु ग्रंथ सुगथ की।
पूजा अर्चा भाँति भाँति सौं निज निज पथ की॥ २०॥
चहुँ दिसि द्विघट दलान देखियत दीरघ कोठे।
भरे भव्य भंडार बिसद वर बने बरोठे॥
आँगन बीच नगीच कूप के मंदिर राजत।
जापै चढ़्यो निसान सान सौं फवि छवि छाजत॥ २१॥

कहूँ स्वादु कड़ाह प्रसाद लगि भोग बटत है।
कहूँ मालपूवा रसाल तिहुँ काल कटत है॥
बहुरि बनत मध्याह्न समय बहु रुचिर रसोईं।
तब भोजन सब लहत रहत तहँ जब जो कोई॥ २२॥

आवत अभ्यागत अनेक मधुकर-व्रतधारी।
पंच भवन भ्रमि पंचभूत पोषन अधिकारी॥
आँचल औ कौपीन कसे कटि कर झोली गहि।
लै मधुकरी प्रथम जात सो नारायन कहि॥ २३॥

बैठि साधु द्वै चार जहाँ तहँ सुचि मतिवारे।
बदन तेज की छटा जटा सिर सुंदर धारे॥
कोऊ काषायी बसन पहिरि कोऊ सिमिरिप रंगी।
सज्जन सुघर सुजान सीलसागर सतसंगी॥ २४॥

कोऊ हरि-लीला कहत सुनत पुलकत पुलकावत।
कोऊ न्याय बेदांत बरनि मुलकत मुलकावत॥
कोउ सितार करतार मेलि हरि-गुन-गन गावत।
कोउ उमंग सौं संग संग ढोलक ढमकावत॥ २५॥

संन्यासिनि के कहुँ महान मंजुल मठ राजैं।
दरदलान कोठे जिनमैं चहुँ दिसि छबि छाजैं॥
छत छतरी बर बंद खंभ गेरू रँग राखे।
अलकतरे रँग कल किवार सित सोहत पाखे॥ २६॥

बट पीपर औ मौलसिरी के बिटप सुहाए।
सुखद सुसीतल छाँह देत अति अजिर छगाए॥

जिनके नीचे लसत लिए कर दंड कमंडल।
बिसद बिराजत जम-अदंड दंडिनि कौं मंडल ॥ २७ ॥
धर्म-सरूप उदार भूप तहँ छेत्र चलावत।
तामें इच्छा पूरि भूरि भिच्छा सब पावत ॥
साहूकार उदार सेठ श्रद्धा सरसाए।
राजा रावत राव भक्ति के भाव भराए ॥ २८ ॥
कबहुँ तहाँ वर बेष भूरि भोजन ठनवावत।
रसना-रंजन रुचिर विविध व्यंजन बनवावत ॥
सकल जथा करि बिनय यथाविधि न्यौति बुलावत।
पुलकित अंग उमंग संग देखत उठि धावत ॥ २९ ॥
पग पखारि कर ढारि बारि सादर बैठारत।
स्वजन-सहित कर व्यजन लिये स्रम स्वेद निवारत॥
आत्म-ज्ञान गंभीर नीरनिधि थाहनहारे।
पंच तत्त्व कौ तत्त्व भली विधि ठाहनहारे ॥ ३० ॥
पावन परम समाज जुरयौ तकि पातक हहरैं।
दुख दारिद दुर्भाग्य दुरित दुर्मति टरि टहरैं ॥
सोभा सुभग ललाम लाहु लोचन कौं भावत।
इत उत तैं बहु लोग ललकि दरसन कौं आवत ॥ ३१ ॥
पातल दोने दिव्य विमल कल कदली दल के।
परत पाँति के पाँति स्वच्छ धोए सुचि-जल के ॥
भाँति भाँति के जात पुनीत पदारथ परसे।
सुंदर सोंधे स्वादु स्वच्छ सब रस सौं सरसे ॥ ३२ ॥

बासुमती कौ भात रमुनिया दाल सँवारी।
कढ़ी पकौरी परी कचौरी मोयनवारी॥
दधिभीने वर बरे बरी सह साग निमोने।
पापर अति परपरे चने चरपरे सलोने॥ ३३॥

नीबू आम अचार अम्ल मीठे रुचिकारी।
चटनी चटपट अरस सरस लटपट तरकारी॥
मोदक मोतीचूर जालजुत मालपुवा वर।
मेवामय श्रीखंड केसरिया खीर मनोहर॥ ३४॥

हर हर हर हर महादेव धुनि धाम मढ़ावत।
कृपा मंद मुसकानि आनि आनंद बढ़ावत॥
पंच कवल करि अँचैं आचमन रुचि उपजावत।
अति आमोद प्रमोद भरे भिच्छा सब पावत॥ ३५॥

कहुँ धनिकनि के धवल धाम अभिराम सुहाए।
चौखँड पँचखँड सप्तखंड वर बिसद बनाए॥
गृह वाटिका समेत सुघर सुंदर सुखदाई।
जिनकी रचना रुचिर निरखि मति रहति लुभाई॥ ३६॥

करत सुगंधित सदन अगरबाती कहुँ सोहैं।
कहुँ फूलनि की ललित लरैं लटकत मन मोहैं॥
कहुँ स्यामा कहुँ अगिन कोकिला कहुँ कल गावैं।
कहुँ चकोर कहुँ कीर सारिका सब्द सुनावैं॥ ३७॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय

प्रातःकाल-वर्णन *

तारे डूबे तम टल गया लालिमा व्योम छाई।
पंछी बोले तमचुर जगे जोति फैली दिशा में॥
शाखा डोली सकल तरु की बारि अंभोज फूले।
धीरे धीरे दिनकर कढ़े तामसी रात बीती॥ १॥
लोनी लोनी सकल लतिका वायु में मन्द डोलीं।
प्यारी प्यारी ललित लहरें भानुजा अंक सोहीं।
सोने की सी कलित किरणें मेदिनी ओर छूटीं॥
फूलों कुंजों कुसुमित वनों क्यारियों जोति फैली॥ २॥
प्रातः शोभा अवनि व्रज में आज प्यारी नहीं थी।
मीठा मीठा विहग-रव भी कान को था न भाता॥
फूले फूले कमल दल थे लोचनों में लगाते।
लाली सारे गगन-तल की कालव्याली समा थी॥ ३॥
चिन्ता की सी कुटिल उठतीं अंक जो थी तरंगें।
वे थी मानों प्रगट करतीं भानुजा की व्यथाएँ॥
धीरे धीरे पवन मृदु में चाव से थीं न डोलीं।
शाखायें भी सहित लतिका शोक से कंपिता थीं॥ ४॥
फूलों पत्तों सकल पर हैं वारि-बूँदें लखातीं।
रोते हैं या विटपि सब यों आँसुओं को दिखाके॥

---

* श्रीकृष्ण के मथुरा-गमन के समय.

रोई थी जो रजनि दुख से नंद की कामिनी के।
ये बूँदें हैं निपतित हुई या उसी के दृगों से ॥ ५ ॥
कोई कोई मृदुल लतिका वेलियाँ औ लताएँ।
भींगी-सी थीं विपुल जल में वारि बूँदों भरी थीं॥
मानो फूटी सकल तन में शोक की अश्रुधारा।
फूलों पत्तों विपुल कलियों डालियों हो बही थीं ॥ ६ ॥
धीरे धीरे पवन ढिग जा फूलवाले द्रुमों के।
शाखाओं से कुसुम-चय को मेदिनी थी गिराती ॥
मानों यों थी हरण करती फुल्लता पादपों की।
जो थी प्यारी न व्रज जन को आज न्यारी व्यथा से ॥ ७ ॥
फूलों का यों अवनि-तल में देखके पात होना।
ऐसी भी थी हृदय-तल में कल्पना आज होती ॥
फूले फूले कुसुम अपने अंक में से गिराके।
वारी वारी सकल तरु भी खिन्नता हैं दिखाते ॥ ८ ॥
नीची ऊँची सरित सर की वीचियाँ ओस-बूँदें।
आभा न्यारी वहन करतीं भानु की अंक में थीं ॥
मानों यों वे हृदय-तल के ताप को थीं दिखाती।
या दाता थी उरसि उनके दीप्तिमाना दुखों की ॥ ९ ॥
सारा नीला-सलिल-यमुना शोक-छाया पगा था।
कंजों में से मधुप कढ़के घूमते थे भ्रमे-से ॥
मानों खोटी विरह-घटिका सामने देखके हो।
कोई भी थी अवनत-मुखी कान्तिहीना मलीना ॥ १० ॥

मैथिलीशरण गुप्त

मातृभूमि

[१]

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुंदर है,
सूर्य-चंद्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है।
नदियाँ प्रेम-प्रवाह फूल तारे मंडन हैं,
बन्दी जन खग-वृन्द शेष-फन सिंहासन हैं।
करते अभिषेक पयोद हैं बलिहारी इस वेष की,
हे मातृभूमि ! तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की॥

[२]

मृतक समान अशक्त विवश आँखों को मींचे,
गिरता हुआ विलोक गर्भ से हमको नीचे।
करके जिसने कृपा हमें अवलम्ब दिया था,
लेकर अपने अतुल अंक में त्राण किया था।
जो जननी का भी सर्वदा थी पालन करती रही,
तू क्यों न हमारी पूज्य हो ? मातृभूमि, मातामही !॥

[३]

जिसकी रज में लोट-लोटकर बड़े हुए हैं,
घुटनों के बल सरक-सरककर खड़े हुए हैं।
परमहंस-सम बाल्यकाल में सब सुख पाये,
जिसके कारण "धूल भरे हीरे" कहलाये।

हम खेले कूदे हर्षयुत जिसकी प्यारी गोद में,
हे मातृभूमि! तुझको निरख मग्न क्यों न हों मोद में?॥

[४]

पालन-पोषण और जन्म का कारण तू ही,
वक्षःस्थल पर हमें कर रही धारण तू ही।
अभ्रंकष प्रासाद और ये महल हमारे,
बने हुए हैं अहो! तुझी से तुझपर सारे।
हे मातृभूमि! जब हम कभी शरण न तेरी पायँगे,
बस, तभी प्रलय के पेट में सभी लीन हो जायँगे॥

[५]

हमें जीवनाधार अन्न तू ही देती है,
बदले में कुछ नहीं किसी से तू लेती है।
श्रेष्ठ एक से एक विविध द्रव्यों के द्वारा,
पोषण करती प्रेम-भाव से सदा हमारा।
हे मातृभूमि! उपजें न जो तुझसे कृषि-अंकुर कभी,
तो तड़प-तड़पकर जल मरें जठरानल में हम सभी॥

[६]

पाकर तुझसे सभी सुखों को हमने भोगा,
तेरा प्रत्युपकार कभी क्या हमसे होगा?
तेरी ही यह देह, तुझी से बनी हुई है,
बस तेरे ही सुरस-सार से सनी हुई है।।
हा! अन्त-समय तू ही इसे अचल देख अपनायगी,
हे मातृभूमि! यह अन्त में तुझमें ही मिल जायगी॥

[७]

जिन मित्रों का मिलन मलिनता को है खोता,
जिस प्रेमी का प्रेम हमें मुददायक होता।
जिन स्वजनों को देख हृदय हर्षित हो जाता,
नहीं टूटता कभी जन्म भर जिनसे नाता।
उन सबमें तेरा सर्वदा व्याप्त हो रहा तत्त्व है,
हे मातृभूमि ! तेरे सदृश किसका महा महत्त्व है ? ॥

[८]

निर्मल तेरा नीर अमृत के सम उत्तम है,
शीतल-मन्द सुगंध पवन हर लेता श्रम है।
षट् ऋतुओं का विविध दृश्ययुत अद्भुत क्रम है,
हरियाली का फ़र्श नहीं मखमल से कम है।
शुचि सुधा सींचता रात में तुझपर चंद्र-प्रकाश है,
हे मातृभूमि ! दिन में तरणि करता तम का नाश है ॥

[९]

सुरभित सुन्दर सुखद सुमन तुझपर खिलते हैं,
भाँति-भाँति के सरस सुधोपम फल मिलते हैं।
ओषधियाँ हैं प्राप्त एक से एक निराली,
खानें शोभित कहीं धातु-वर रत्नोंवाली।
जो आवश्यक होते हमें मिलते सभी पदार्थ हैं,
हे मातृभूमि ! वसुधा, धरा, तेरे नाम यथार्थ हैं ॥

[१०]

दीख रही है कहीं दूर तक शैल-श्रेणी,
कहीं वनावलि बनी हुई है तेरी वेणी।
नदियाँ पैर पखार रही हैं बनकर चेरी,
पुष्पों से तरु-राजि कर रही पूजा तेरी।
मृदु मलय-वायु मानों तुझे चन्दन चारु चढ़ा रही,
हे मातृभूमि! किसका न तू सात्त्विक भाव बढ़ा रही? ॥

[११]

क्षमामयी, तू दयामयी है, क्षेममयी है,
सुधामयी, वात्सल्यमयी, तू प्रेममयी है।
विभवशालिनी, विश्वपालिनी, दुखहर्त्री है,
भयनिवारिणी, शान्ति-कारिणी, सुखकर्त्री है।
हे शरणदायिनी देवि! तू करती सबका त्राण है,
हे मातृभूमि! सन्तान हम, तू जननी तू प्राण है।

[१२]

आते ही उपकार याद हे माता! तेरा,
हो जाता मन मुग्ध भक्ति-भावों का प्रेरा।
तू पूजा के योग्य, कीर्ति तेरी हम गावें,
मन तो होता तुझे उठाकर शीश चढ़ावें।
वह शक्ति कहाँ, हा! क्या करें, क्यों हमको लज्जा न हो?
हम मातृभूमि! केवल तुझे शीश झुका सकते अहो! ॥

[१३]

कारणवश जब शोक-दाह से हम दहते हैं,
तब तुझपर ही लोट-लोटकर दुख सहते हैं।
पाखंडी भी धूल चढ़ाकर तनु में तेरी,
कहलाते हैं साधु नहीं लगती है देरी।
इस तेरी ही शुचि धूलि में मातृभूमि ! वह शक्ति है,
जो क्रूरों के भी चित्त में उपजा सकती भक्ति है॥

[१४]

कोई व्यक्ति विशेष नहीं तेरा अपना है,
जो यह समझे हाय ! देखता वह सपना है।
तुझको सारे जीव एक-से ही प्यारे हैं,
कर्मों के फल-मात्र यहाँ न्यारे न्यारे हैं।
हे मातृभूमि ! तेरे निकट सबका सम सम्बन्ध है,
जो भेद मानता वह अहो ! लोचनयुत भी अन्ध है॥

[१५]

जिस पृथिवी में मिले हमारे पूर्वज प्यारे,
उससे हे भगवान् ! कभी हम रहें न न्यारे।
लोट-लोटकर वहीं हृदय को शान्त करेंगे,
उसमें मिलते समय मृत्यु से नहीं डरेंगे।
उस मातृभूमि की धूल में जब पूरे सन जायँगे,
होकर भव-बंधन-मुक्त हम आत्मरूप बन जायँगे॥

शकुन्तला की बिदा

शान्त हृदय वात्सल्य-करुण से सना हुआ है,
कण्व-तपोवन आज सदन-सा बना हुआ है।
शकुन्तला की विदा आज है प्रिय के घर को,
विदित हुआ सब वृत्त हर्षपूर्वक मुनिवर को ॥ १ ॥

वे पुत्री के लिए चाहते थे वर जैसा,
निज सुकृतों से स्वयं पा लिया उसने वैसा।
यह विचारकर तुष्ट हुए वे अपने मन में,
साज सजाये गये विदा के पावन वन में ॥ २ ॥

शकुन्तला क्या जाय हाय! वल्कल ही पहने?
वन-देवों ने दिये उसे सुंदर पट-गहने।
सखियों ने शृंगार किया उसका मन-माना,
जिसको अन्तिम समझ बहुत कुछ उसने जाना ॥ ३ ॥

प्रिय-दर्शन का उसे यदपि उत्साह बड़ा था,
पर स्वजनों का विरह-ताप भी बहुत कड़ा था।
विकल हुई वह उभय ओर की बाधा सहती,
ऊपर-नीचे भूमि यथा आकर्षित रहती ॥ ४ ॥

चारों ओर उदास भाव आश्रम में छाये,
सखियों के भी नेत्र आँसुओं से भर आये।
किन्तु उन्होंने कहा—"सखी! कुछ सोच न कीजो,
प्रिय को उनकी नाम-मुद्रिका दिखला दीजो" ॥ ५ ॥

शकुन्तला कुछ कह न सकी गद्‌गद् होने से,
था पवित्र कुछ और न उसके उस रोने से।
भावी जीवन प्रेम-पूर्ण हो खिल सकता है,
यह बिछुड़ा धन किन्तु कहाँ फिर मिल सकता है ? ॥ ६ ॥

त्यागी थे मुनि कण्व, उन्हें भी करुणा आई,
होती है बस सुता धरोहर, वस्तु पराई।
होम-शिखा की परिक्रमा उससे करवाई,
और उन्होंने स्वस्ति-गिरा यों उसे सुनाई ॥ ७ ॥

"तुझको पति के यहाँ मिले सब भाँति प्रतिष्ठा,
ज्यों ययाति के यहाँ हुई पूजित शर्मिष्ठा।
सार्वभौम पुरु पुत्र हुआ था उसके जैसे—
तेरे भी कुल-दीप दिव्य औरस हो वैसे ॥ ८ ॥

"गुरुओं की सम्मान-सहित शुश्रूषा करियो,
सखी-भाव से हृदय सदा सौतो का हरियो।
करे यदपि अपमान मान मत कीजो पति से,
हूजो अति सन्तुष्ट स्वल्प भी उसकी रति से ॥ ९ ॥

"परिजन को अनुकूल आचरण से सुख दीजो,
कभी भूलकर बड़े भाग्य पर गर्व न कीजो।
इसी चाल से स्त्रियाँ सुगृहिणी-पद पाती हैं,
उलटी चलकर वंश-व्याधियाँ कहलाती हैं ॥ १० ॥

"शकुन्तले निश्चिन्त आज हूँ यद्यपि तुझसे,
सहा न जाता किन्तु विरह यह तेरा मुझसे।

अहो ! गृहस्थ-समान मानता हूँ अपने को,
सच्चा-सा मैं आज जानता हूँ सपने को ! ॥ ११ ॥

"सुते ! तव स्मृति-चिह्न तपोवन में बहुतेरे—
देते थे जो महामोद मानस में मेरे।
उदासीनता बढ़ा रहे हैं आज सभी ये,
कुछ के कुछ हो गये दृश्य सब अभी अभी ये ! ॥ १२ ॥

"सारा आश्रम आज शून्यता दिखलाता है,
वन से भी वैराग्य-भाव बढ़ता जाता है।
वनदेवी-सी कौन विपिन में अब विचरेगी ?
मृग-सन्तति अब किसे घेरकर खेल करेगी ? ॥ १३ ॥

"कौन मालिनी-तीर नीर लेने जावेगी ?
कौन मछलियाँ चुगा-चुगाकर सुख पावेगी ?
कौन प्रेम से पुष्प-वाटिका को सींचेगी ?
कौन अचानक सखीजनों के दृग मींचेगी ? ॥ १४ ॥

"कौन दौड़कर शीघ्र उठाने को हीरे-से
नीड़-च्युत खग-पोत सँभालेगी धीरे से ?
रंग-रंग के वन-विहङ्ग पेड़ों से उड़कर—
बोलेंगे मृदु वचन बैठ किसके अंगों पर ? ॥ १५ ॥

"बिना कहे ही कौन अखिल आलसता त्यागे—
रक्खेगी होमोपकरण वेदी के आगे ?
मेरे पथ के कौन कास-कंटक चुन लेगी ?
कौन उचित आतिथ्य अतिथि लोगों को देगी ? ॥ १६ ॥

"वेदी खुदती देख हरिण-शृङ्गों के मारे—
 'बेटी' कहकर किसे बुलाऊँगा मैं द्वारे?
किसको आया देख शान्त वे हो जावेंगे?
 अपनी खोई हुई सम्पदा-सी पावेंगे ॥१७॥

"जाने दूँ, यह विषय और भी है दुखदायी,
 सुते! धैर्य धर, बने मार्ग तेरा सुखदायी।
मेरा वह उपदेश कभी तू भूल न जाना,
 शील-सुधा से सींच जगत को स्वर्ग बनाना" ॥१८॥

यों कहकर जब मौन हुए मुनि सकरुण होकर—
 शकुन्तला गिर पड़ी पदों में उनके रोकर।
"होंगे कब हे तात! तपोवन के दर्शन फिर?"
 इतना कहकर हुई दुःख से वह अति अस्थिर ॥१९॥

"रहकर चिरदिन भूमि-सपत्नी, नृप की रानी,
 रुके न जिसका मार्ग पुत्र पाकर कुलमानी।
करके उसका व्याह, राज्य-सिंहासन देकर
 आवेगी पति-संग यहाँ फिर तू यश लेकर ॥२०॥

"जब तू प्रिय के यहाँ सुगृहिणी-पद पावेगी,
 गुरु कार्यों में लीन सदा सुख सरसावेगी।
रवि को प्राची-सदृश श्रेष्ठ सुत उपजावेगी,
 तब यह मेरा विरह-दुःख सब बिसरावेगी" ॥२१॥

यों ही बहुविध इसे कण्व मुनि ने समझाया,
 विदा किया, दो शिष्यवरों को संग पठाया।

गई गौतमी तपस्विनी भी पहुँचाने को—
उसका शुभ सौभाग्य देखकर सुख पाने को ॥ २२ ॥

शकुन्तला घर गई विपिन को सूना करके,
दोनों सखियाँ फिरीं किसी विध धीरज धरके।
मोरों ने निज नृत्य, मृगों ने चरना छोड़ा,
हिमगिरि ने भी बाष्प-वारि-सम झरना छोड़ा! ॥ २३ ॥

झंकार

इस शरीर की सकल शिराएँ हों तेरी तंत्री के तार,
आघातों की क्या चिन्ता है, उठने दे ऊँची झंकार।
नाचे नियति, प्रकृति सुर साधे, सब सुर हों सजीव, साकार,
देश देश में, काल काल में, उठे गमक-गहरी गुंजार।
कर प्रहार, हाँ, कर प्रहार तू, मार नहीं, यह तो है प्यार,
प्यारे, और कहूँ क्या तुझसे, प्रस्तुत हूँ मैं, हूँ तैयार।
मेरे तार तार से तेरी, तान तान का हो विस्तार,
अपनी अँगुली के धक्के से खोल अखिल श्रुतियों के द्वार।
ताल ताल पर भाल झुकाकर मोहित हों सब बारंबार,
लय बँध जाय और क्रम क्रम से सम मे समा जाय संसार ॥

यात्री

रोको मत, छेड़ो मत कोई मुझे राह में,
चलता हूँ आज किसी चंचल की चाह में।
काँटे लगते हैं, लगें, उनको सराहिए,
कंटक निकालने को कंटक ही चाहिए॥
घहरा रहे हैं घन चिन्ता नहीं इनकी,
अवधि न बीत जाय हाय! चार दिन की।
छाया है अँधेरा, रहे, लक्ष्य है समक्ष ही,
दीप्त मुझे देगा अभिराम कृष्ण पक्ष ही॥
ठहरो, समक्ष ही तो क्षुब्ध पारावार है,
करना उसे ही अरे! आज मुझे पार है।
भूत मिलें, प्रेत मिलें, वे मरे—मैं जीता हूँ;
भीति क्या करेगी भला, प्रीति-सुधा पीता हूँ॥
मौत लिए जा रही है, तो फिर क्या डर है?
दूती वह प्रिय की है, दूर नहीं घर है
आपको न देखा आप मैंने कभी आपमें,
डूबेगा विलाप आज डूबेगा मिलाप में॥

रामनरेश त्रिपाठी

प्रकृति-वर्णन

छूता हुआ गाँव की सीमा अति निर्मल जलवाला।
बहता है अविराम निरंतर कल-कल स्वर से नाला।
अनति दूर पर हरियाली से लदी खड़ी गिरि-माला।
किन्तु नहीं इससे हृदयों में है आनन्द-उजाला॥ १॥
कहीं श्याम चट्टान, कहीं दर्पण-सा उज्ज्वल सर है।
कहीं हरे तृण खेत, कहीं गिरि स्रोत-प्रवाह प्रखर है।
कहीं गगन के खंभ नारियल, तार भार सिर धारे।
रस-रसिकों के लिए खड़े ज्यों सुप्त नकार इशारे॥ २॥
ऊँचे से झरने झरते हैं, शीतल धार धवल है।
यहाँ परम सुख-शान्ति-समन्वित नित आनंद अटल है।
कहीं धार के पास शिलापर बैठ लोग क्षण भर को।
पा सकते हैं शान्ति, मिटा सकते हैं जी के ज्वर को॥ ३॥
धार-धार बक-पंक्ति-गमन से उज्ज्वल फूलोंवाली।
मेघपुष्प-वर्षा से धूमिल घटा क्षितिज पर काली।
लहराती दृग की सीमा तक धानों की हरियाली।
वारिज-नयन गगन-छवि-दर्शक सर की छटा निराली॥ ४॥
निम्ब कदम्ब अम्ब इमली की श्याम निरातप छाया।
सेवन कर फिर लोक-शोक की याद न रखती काया।

बैठ बाग की विशद मेंड़ पर कोमल अमल पवन में।
आँख मूँद करता किसान है श्रम का अनुभव मन में ॥ ५ ॥
कोकिल का आलाप पपीहे की विरहाकुल बानी।
तोता मैना का विवाद बुलबुल की प्रेम-कहानी।
मधुर प्रेम के गीत तरुनियाँ गातीं खेत निरातीं।
क्या ये क्षण भर को न किसी के मन का कष्ट भुलातीं! ॥ ६ ॥
विमलोदक पुष्कर में विकसे चित्र-विचित्र कुसुम हैं।
खड़े चतुर्दिक शान्त भाव से लतिकालिंगित द्रुम हैं।
देख सलिल-दर्पण में शोभा वे फूले न समाते।
दे प्रसून-उपहार सरोवर को निज हर्ष जनाते ॥ ७ ॥
वंजुल मंजुल सदा सुसज्जित मज्जित छदन-विसर से।
अलि-कुल-आकुल बकुल मुकुल-संकुल-व्याकुल नभचर से।
आसपास का पथ सुरभित है महक रही फुलवारी।
बिछी फूल की सेज, बाजती बीणा है सुखकारी ॥ ८ ॥
नालों का संयोग, साँझ का समय, घना जंगल है।
ऊँचे-नीचे खोह कगारे निर्जन बीहड़ थल है।
रह-रहकर सौरभ समीर में हैं वन-पुष्प उड़ाते।
ताप-तप्त जन यहाँ क्यों न आकर क्षण एक जुड़ाते ! ॥ ९ ॥
संध्या समय चतुर्दिक से बहु हर्ष-निनाद सुनाते।
विविध रूप-रंगों के पक्षी झुंड-झुंड मिल आते।
बैठ पल्लवों पर सब मिलकर गान मनोहर गाते।
अद्भुत वाद्य-यंत्र पादप को हैं प्रतिदिवस बनाते ॥ १० ॥

प्रातःकाल ममत्व-हीन वे कहाँ-कहाँ उड़ जाते।
जग को है अनित्य मेले का रोचक पाठ पढ़ाते।
यह सब देख नहीं क्यों मन मे उत्तम भाव समाते!
लोग यहाँ पर बैठ घड़ी भर क्यो न सीख कुछ जाते !!११॥

अति निस्तब्ध निशीथ तमावृत मौन प्रकृति-कुल सारा।
शान्त गगन में झिलमिल करते हैं नित नीरव तारा।
निद्रित दिशा, समीर सुकोमल, उदयोन्मुख हिमकर है।
क्या सब शोक भुलाने का यह नहीं एक अवसर है !!१२॥

गिरि, मैदान, नगर, निर्जन मे एक भाव में मातीं।
सरल कुटिल अति तरल मृदुल गति से बहु रूप दिखातीं।
अस्थिर समय समान प्रवाहित ये नदियाँ कुछ गातीं।
चली कहाँ से, कहाँ जा रहीं, क्यो आईं, क्यों जातीं? ॥१३॥

कोमल पथ है, दिशा शान्त है, वायु स्वच्छ सुखकर है।
गान भृग का, नृत्य मोर का, दृश्य बड़ा सुन्दर है।
ऐसी विविध विलक्षणता से सजा प्रकृति का तन है।
होते क्यों न देखकर इनको हर्ष-विमोहित जन हैं !!१४॥

पंकज, रम्भा, मदन, मल्लिका, पोस्त, गुलाब, बकुल का।
रक्तक, कुंद-कली, पिक, किंशुक, नरगिस, मधुकर-कुल का।
संग्रह है चम्पक शिरीष का घर्म सुरभिमय नारी।
मानो फूल रही है सुंदर घर-घर में फुलवारी ॥१५॥

एक-एक तृण बतलाता है जगदीश्वर की सत्ता।
व्यापक है लघु से लघु में भी उसकी विपुल महत्ता।

एक मधुर संगीत हो रहा है ब्रह्मांड-भवन में।
उसकी ही ध्वनि गूंज रही है अणु परमाणु गगन में॥ १६॥
ग्रहगण एक नियत कक्षा में फिरकर स्वर भरते हैं।
सदा उसी की पूर्ति-हेतु वे प्रणव-गान करते हैं।
आँधी का आवेग, मेघ की गरज, चमक बिजली की।
पत्तों की सुमधुर मर्मर-ध्वनि, हँसी प्रसून-कली की॥ १७॥
सरिता का चुपचाप सरकना, दहन-स्वभाव अनल का।
झरनों का अविराम नाद, कलकल रव चंचल जल का।
मधुरालाप, प्रलाप, विपुल आघोष क्षुब्ध वारिधि का।
भिन्न भिन्न भाषा मनुष्य की उच्चारण बहु विधि का॥ १८॥
खग, पशु, कीट, पतंग आदि के बोल विभिन्न समय के।
हैं सब मन्द्र तार स्वर उसके ताल सहायक लय के।
वज्रपात है थाप उसी की, ऋतुएँ हैं गति उसकी।
जीवन है वह अखिल विश्व का, महाप्रलय यति उसकी॥ १९॥
कैसा सुख-संगीत शांतिप्रद उज्ज्वल अमल विमल है!
उसका सुनना ही मनुष्य-जीवन का लक्ष्य अटल है।
साधु संयमी उसे श्रवण कर भवसागर तरते हैं।
योगी जन सुनकर उसको अमरत्व प्राप्त करते हैं॥ २०॥

कहाँ ?

ना मंदिर मे, ना मसजिद मे, ना गिरजे के आस-पास में;
ना पर्वत में, ना नदियों में, ना घर बैठे, ना प्रवास में।
ना कुंजों मे, ना उपवन के शांति-भवन या सुख-निवास मे;
ना गाने मे, ना बाने मे, ना आँसू में, नहीं हास में।
ना छंदों मे, ना प्रबंध में, अलंकार ना अनुप्रास में,
खोज ले कोई राम मिलेंगे दीन जनों की भूख-प्यास में।

जागरण

जाग रण ! जाग, निज राग भर त्याग में,
विश्व के जागरण का तुही चिह्न है।
सृष्टि परिणाम है घोर संघर्ष का,
शांति तो मृत्यु का एक उपनाम है॥ १॥

श्वास-प्रश्वास इस देह के साथ ही
जन्म ले नित्य के यात्रियों की तरह
लक्ष्य की ओर दिन-रात गतिवान हैं,
प्राणधारी नहीं जानता कौन यह ?॥ २॥

सृष्टि के आदि से नित्य रवि और तम
एक ही वेग से मग्न हैं दौड़ में।
क्लांत हो जायँ, पर शांत होंगे न वे
व्यग्र हैं एक परिणाम की प्राप्ति में॥ ३॥

रात दिन मास ऋतु वर्ष युग कल्प भी
सृष्टि की आयु के साथ प्रत्येक क्षण
युद्ध में रुद्ध हैं; क्यों न हम मान लें
घोर संग्राम ही प्रकृति का ध्येय है ! ॥ ४ ॥

लोक मे द्रव्य-बल और श्रम-शक्ति का
तुमुल संग्राम अनिवार्य है सर्वदा।
सत्य है, मानवी जगत् सौंदर्य से
पूर्ण हैं; किन्तु है दैन्य ही की कला ॥ ५ ॥

भव्य प्रासाद, रमणीय उद्यान वन
नगर अभिराम, द्रुम-पंक्तिमय राजपथ
दिव्य आभरण, कमनीय रत्नावली,
वस्त्र बहु रंग के, यान बहु मान के, ॥ ६ ॥

स्वाद के विविध सुपदार्थ, श्रुति और मन-
हरण प्रिय नाद को क्यों न हम यों कहें,
व्यापिनी दीनता और संपत्ति के
घोर संघर्ष के इष्ट परिणाम हैं ॥ ७ ॥

नींद जिस भाँति बल-वृद्धि का हेतु है,
मृत्यु भी नव्य रण-भूमि का द्वार है;
चाहती है प्रकृति घोर संघर्ष, तो
शांति की कल्पना बुद्धि का दैन्य है ॥ ८ ॥
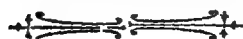
सियारामशरण गुप्त

एक फूल की चाह

[१]

उद्वेलित कर अश्रु-राशियाँ, हृदय-चिताएँ धधकाकर,
महा महामारी प्रचंड हो फैल रही थी इधर-उधर।
क्षीणकंठ मृतवत्साओं का करुण रुदन दुर्दान्त नितान्त,
भरे हुए था निज कृश-रव में हाहाकार अपार अशान्त।
बहुत रोकता था सुखिया को, 'न जा खेलने को बाहर',
नहीं खेलना रुकता उसका नहीं ठहरती वह पल भर।
मेरा हृदय काँप उठता था बाहर गई निहार उसे,
यही मानता था कि बचा लूँ किसी भाँति इस बार उसे।
भीतर जो डर रहा छिपाये, हाय! वही बाहर आया;
एक दिवस सुखिया के तनु को ताप-तप्त मैंने पाया।
ज्वर में विह्वल हो बोली वह, क्या जानूँ किस डर से डर,—
मुझको देवी के प्रसाद का एक फूल ही दो लाकर!

[२]

बेटी, बतला तो तू मुझको, किसने तुझे बताया यह?
किसके द्वारा, कैसे, तूने भाव अचानक पाया यह?
मैं अछूत हूँ, मुझे कौन हा! मंदिर में जाने देगा?
देवी का प्रसाद ही मुझको कौन यहाँ लाने देगा?

बार-बार फिर-फिर तेरा हठ ! पूरा इसे करूँ कैसे ?
किससे कहूँ, कौन बतलावे, धीरज हाय ! धरूँ कैसे ?
कोमल कुसुम-समान देह हा ! हुई तप्त अंगारमयी,
प्रतिपल बढ़ती ही जाती है विपुल वेदना व्यथा नई।
मैंने कई फूल ला-लाकर रक्खे उसकी खटिया पर;
सोचा,—शांत करूँ मैं उसको किसी तरह तो बहलाकर।
तोड़-मोड़ वे फूल फेंक सब बोल उठी वह चिल्लाकर—
मुझको देवी के प्रसाद का एक फूल ही दो लाकर !

[३]

क्रमशः कंठ क्षीण हो आया शिथिल हुए अवयव सारे,
बैठा था नव-नव उपाय की चिन्ता में मैं मन मारे।
जान सका न प्रभात सजग से हुई अलस कब दोपहरी,
स्वर्ण-घनों में कब रवि डूबा, कब आई संध्या गहरी।
सभी ओर दिखलाई दी बस अन्धकार की ही छाया,
छोटी-सी बच्ची को ग्रसने कितना बड़ा तिमिर आया !
ऊपर विस्तृत महाकाश में जलते-से अंगारों से,
झुलसी-सी जाती थी आँखें जगमग जगते तारों से।
देख रहा था—जो सुस्थिर हो नहीं बैठती थी क्षण भर,
हाय ! वही चुपचाप पड़ी थी अटल शांति-सी धारण कर।
सुनना वही चाहता था मैं उसे स्वयं ही उकसाकर—
मुझको देवी के प्रसाद का एक फूल ही दो लाकर !

[४]

हे मातः, हे शिवे, अंबिके, तप्त ताप यह शान्त करो;
निरपराध छोटी बच्ची यह, हाय ! न मुझसे इसे हरो !
काली कान्ति पड़ गई इसकी, हँसी न जानें गई कहाँ,
अटक रहे हैं प्राण क्षीणतर साँसों में ही हाय यहाँ !
अरी निष्ठुरे, बढ़ी हुई ही है यदि तेरी तृषा नितान्त,
तो कर ले तू उसे इसी क्षण मेरे इस जीवन से शान्त !
मैं अछूत हूँ तो क्या मेरी विनती भी है हाय ! अपूत ?
उससे भी क्या लग जावेगी तेरे श्रीमंदिर को छूत ?
किसे ज्ञात, मेरी विनती वह पहुँची अथवा नहीं वहाँ,
उस अपार सागर का दीखा पार न मुझको कहीं वहाँ।
अरी रात, क्या अक्षयता का पट्टा लेकर आई तू ?
आकर अखिल विश्व के ऊपर प्रलय-घटा-सी छाई तू !
पग भर भी न बढ़ी आगे तू, डटकर बैठ गई ऐसी,
क्या न अरुण-आभा जागेगी, सहसा आज विकृति कैसी !
युग के युग-से बीत गये हैं, तू ज्यों-की-त्यों है लेटी,
पड़ी एक करवट कब से तू, बोल, बोल, कुछ तो बेटी !
वह चुप थी, पर गूंज रही थी उसकी गिरा गगन-भर भर,—
'मुझको देवी के प्रसाद का एक फूल तुम दो लाकर !'

[५]

"कुछ हो, देवी के प्रसाद का एक फूल तो लाऊँगा;
हो तो प्रातःकाल, शीघ्र ही मंदिर को मैं जाऊँगा।

तुझपर देवी की छाया है, और इष्ट है यही तुझे;
देखूँ, देवी के मंदिर में रोक सकेगा कौन मुझे।"

मेरे इस निश्चल निश्चय ने झट-से हृदय किया हलका;
ऊपर देखा,—अरुण राग से रंजित भाल नभस्थल का!

झड़-सी गई तारकावलि थी म्लान और निष्प्रभ होकर,
निकल पड़े थे खग नीड़ों से मानों सुधबुध-सी खोकर।

रस्सी-डोल हाथ में लेकर निकट कुएँ पर जा जल खींच,
मैंने स्नान किया शीतल हो, सलिल-सुधा से तनु को सींच।

उज्ज्वल वस्त्र पहन घर आकर अशुचि-ग्लानि सब धो डाली,
चन्दन-पुष्प-कपूर-धूप से सज ली पूजा की थाली।

सुखिया के सिरहाने जाकर मैं धीरे-से खड़ा हुआ,
आँखें झँपी हुई थीं, मुख भी मुरझा-सा था पड़ा हुआ।

मैंने चाहा,—उसे चूम लूँ, किन्तु अशुचिता से डरकर,
अपने वस्त्र सँभाल, सिकुड़कर खड़ा रहा कुछ दूरी पर।

वह कुछ-कुछ मुसकाई सहसा, जानें किन स्वप्नों में लग्न,
उसकी वह मुसकाहट भी हा! कर न सकी मुझको मुद-मग्न।

अक्षम मुझे समझकर क्या तू हँसी कर रही है मेरी?
बेटी, जाता हूँ मंदिर में आज्ञा यही समझ तेरी।

उसने नहीं कहा कुछ, मैं ही बोल उठा तब धीरज धर,—
तुझको देवी के प्रसाद का एक फूल तो दूँ लाकर!

[६]

ऊँचे शैल-शिखर के ऊपर मन्दिर था विस्तीर्ण विशाल;
स्वर्ण-कलश-सरसिज विहसित थे पाकर समुदित रवि-कर-जाल।

परिक्रमा-सी कर मंदिर की ऊपर से आकर झर झर,
वहाँ एक झरना झरता था कल-कल मधुर गान कर कर।

पुष्पहार-सा जँचता था वह मंदिर के श्रीचरणों में,
त्रुटि न दीखती थी भीतर भी पूजा के उपकरणों में।

दीप-धूप से आमोदित था मंदिर का आँगन सारा,
गूँज रही थी भीतर-बाहर मुखरित उत्सव की धारा।

भक्त-वृन्द मृदु मधुर कंठ से गाते थे सभक्ति मुदमय,—
'पतित-तारिणी पाप-हारिणी, माता, तेरी जय-जय-जय!'

'पतित-तारिणी, तेरी जय-जय,'—मेरे मुख से भी निकला,
बिना बढ़े ही मैं आगे को जाने किस बल से ढिकला!

माता, तू इतनी सुन्दर है, नहीं जानता था मैं यह;
माँ के पास रोक बच्चों को, कैसी विधि यह तू ही कह!

आज स्वयं अपने निदेश से तूने मुझे बुलाया है;
तभी आज पापी अछूत यह श्रीचरणों तक आया है!

मेरे दीप-फूल लेकर वे अम्बा को अर्पित करके
दिया पुजारी ने प्रसाद जब आगे को अंजलि भरके;

भूल गया उसका लेना झट, परम लाभ-सा पाकर मैं,
सोचा,—बेटी को माँ के ये पुण्य-पुष्प दूँ जाकर मैं।

[७]

सिंह-पौर तक भी आँगन से नहीं पहुँचने मैं पाया,
सहसा यह सुन पड़ा कि—"कैसे यह अछूत भीतर आया?
पकड़ो, देखो भाग न जावे, बना धूर्त यह है कैसा;
साफ-स्वच्छ परिधान किये है, भले मानुषो के जैसा!
पापी ने मंदिर में घुसकर किया अनर्थ बड़ा भारी;
कलुषित कर दी है मंदिर की चिरकालिक शुचिता सारी।"
ऐं, क्या मेरा कलुष बड़ा है देवी की गरिमा से भी;
किसी बात में हूँ मैं आगे माता की महिमा के भी?
माँ के भक्त हुए तुम कैसे करके यह विचार खोटा?
माँ के सम्मुख ही माँ का तुम गौरव करते हो छोटा!
कुछ न सुना भक्तों ने, झट-से मुझे घेरकर पकड़ लिया,
मार-मारकर मुक्के-घूँसे धम-से नीचे गिरा दिया!
मेरे हाथो से प्रसाद भी बिखर गया हा! सबका सब,
हाय! अभागी बेटी, तुझ तक कैसे पहुँच सके यह अब?
मैंने उनसे कहा,—दंड दो मुझे मारकर, ठुकराकर,
बस, यह एक फूल कोई भी दो बच्ची को ले जाकर।

[८]

न्यायालय ले गये मुझे वे, सात दिवस का दंड-विधान
मुझको हुआ; हुआ था मुझसे देवी का महान अपमान!
मैंने स्वीकृत किया दंड वह शीश झुकाकर चुप ही रह;
उस असीम अभियोग, दोष का क्या उत्तर देता, क्या कह?

सात रोज़ ही रहा जेल में या कि वहाँ सदियाँ बीतीं !
अविश्रांत बरसा करके भी आँखें तनिक नहीं रीतीं।
क़ैदी कहते—"अरे मूर्ख, क्यों ममता थी मंदिर पर ही ?
पास वहाँ मसजिद भी तो थी, दूर न था गिरजाघर भी।"
कैसे उनको समझाता मैं, वहाँ गया था क्या सुख से;
देवी का प्रसाद चाहा था बेटी ने अपने मुख से।

[९]

दंड भोगकर जब मैं छूटा, पैर न उठते थे घर को;
पीछे ठेल रहा था कोई भय-जर्जर तनु-पंजर को।
पहले की-सी लेने मुझको नहीं दौड़कर आई वह;
उलझी हुई खेल में ही हा ! अबकी दी न दिखाई वह।
उसे देखने मरघट को ही गया दौड़ता हुआ वहाँ,—
मेरे परिचित बन्धु प्रथम ही फूँक चुके थे उसे जहाँ।
बुझी पड़ी थी चिता वहाँ पर छाती धधक उठी मेरी,
हाय ! फूल-सी कोमल बच्ची हुई राख की थी ढेरी !
अन्तिम बार गोद मे बेटी, तुझको ले न सका मैं हा !
एक फूल माँ का प्रसाद भी तुझको दे न सका मैं हा !
वह प्रसाद देकर ही तुझको जेल न जा सकता था क्या ?
तनिक ठहर ही सब जन्मों के दंड न पा सकता था क्या ?
बेटी की छोटी इच्छा वह कहीं पूर्ण मैं कर देता,
तो क्या अरे दैव, त्रिभुवन का सभी विभव मैं हर लेता ?
यहीं चिता पर धर दूँगा मैं, कोई अरे सुनो, वर दो,—
मुझको देवी के प्रसाद का एक फूल ही लाकर दो !

गोपालशरणसिंह

शिशु की दुनिया

[१]

माना सदा जाता रजनीश है खिलौना वहाँ,
बनता तमाशा वहाँ नित्य अंशुमाली है।
डाले हुए पैर का अँगूठा मुख में मनोज्ञ,
आता वहाँ याद शिशु-रूपी वनमाली है।
लाली अनुराग की सदैव रहती है वहाँ,
रखती उजाला वहाँ चन्द्र-मुखवाली है।
बनते मनुज भी हैं हाथी और घोड़ा वहाँ,
शिशु! सचमुच तेरी दुनिया निराली है॥

[२]

छाई रहती है सदा सुख की घटा यों वहाँ,
होती कभी चित्त से न दूर हरियाली है।
चिन्ता दुख शोक वहाँ आने नहीं पाते कभी,
करती सदैव वहाँ माता रखवाली है।
मोह मद मत्सर का होता न प्रवेश वहाँ,
रहता न कोई वहाँ कपटी कुचाली है।
राजा है न कोई वहाँ रानी है न कोई वहाँ,
शिशु! सब भाँति तेरी दुनिया निराली है॥

घनश्याम

[१]

श्यामल है नभ श्याम महीतल, श्याम महीरुह भी अभिराम हैं।
श्यामल नीरधि-नीर मनोहर, नीरद नीरज श्याम ललाम हैं।
श्यामल हैं वन बाग सरोवर, श्यामल शैल महा छवि-धाम हैं।
कौन भला कह है सकता, इसमें उसमें किसमें घनश्याम हैं॥

[२]

हों अथवा वह हो न कहीं पर, हाँ, सबके मन में घनश्याम हैं।
सुन्दर श्याम-सरोरुह से छवि-धाम विलोचन में घनश्याम हैं।
हैं करते अविराम विहार, छिपे उर-कानन में घनश्याम हैं।
जीवन-दायक हैं वन के सम, जीवन जीवन में घनश्याम हैं॥

ताजमहल

मानी-सा खड़ा है अभिमानी निज गौरव का,
सचमुच ताज तेरा जग में न सानी है।
तुझको विलोक फल मिलता विलोचन का,
आती याद शिल्प-कला रुचिर पुरानी है।
बादशाह शाहजहाँ मुमताज बेगम की,
रह गया तू ही एक प्रीति की निशानी है।
कलकल-नादिनी कलिन्दजा सुनाके तुझे,
कह रही मानों वही प्रेम की कहानी है॥

वह छवि

मञ्जुल मयंक में, मयंकमुखी-आनन में,
वैसो निष्कलंक कान्ति देती न दिखाई है।
दृग झिप जाते, देख पाते हम कैसे उसे,
ऐसी प्रभा किसने प्रभाकर में पाई है।
न्यारी तीन लोक से है प्यारी सुखकारी भारी,
सारी मनोहारी छटा उसमें समाई है।
जिसको विलोक फीकी शरद-जुन्हाई होती,
वह मनभाई छवि किसको न भाई है॥ १॥

नित्य नई शोभा दिखलाती है लुभाती वह,
किसमें सलोनी सुघराई कहो, ऐसी है।
केतकी की, कुन्द की, कदम्ब को कथा है कौन,
कल्पलतिका में कहाँ कान्ति उस जैसी है।
रति में, रमा में रमणीयता कहाँ है वैसी,
कनक-लता में कमनीयता न वैसी है।
छहर छहर छहराति है छबीली छटा,
आहा, वह सुघर सजीली छवि कैसी है॥ २॥

सुषमा उसी की अवलोकके सुधाकर में,
रूप-सुधा पीकर चकोर न अघाते हैं।
घन की घटा में नव निरख उसी की छटा,
मंजुल मयूर होते मोद-मद-माते हैं।

फूलों में उसी की शोभा देखके मिलिन्द-वृन्द
फूले न समाते, "गुन-गुन" गुण गाते हैं।
दीप्यमान दीपक में देख वही छवि बाँकी
प्रेम से प्रफुल्लित पतङ्ग जल जाते हैं॥ ३॥

उसको विलोक दामिनि है छिप जाती शीघ्र,
अति मनभावनी भी भामिनी लजाती है।
उसके समीप दीपमालिका न भाती ज़रा,
मंजु-मणि-मालिका भी नेक न सुहाती है।
निज हीनता है मोतियों से सही जाती नहीं,
उनकी इसी से छिद जाती क्या न छाती है।
वह छवि देख-देख दृष्टि तृप्ति पाती नहीं
मनों स्वयं प्रेम-वश उसमें समाती है॥ ४॥

कञ्ज-कलिका में नहीं सुषमा मयङ्क की है,
कोमलता कंज की मयङ्क ने न पाई है।
चंपक-कली में न सुवर्ण की सुवर्णता है,
चम्पक की चारुता सुवर्ण में न आई है।
रत्न की रुचिरता में, मणि की मनोज्ञता में,
एक-दूसरे की प्रभा देती न दिखाई है।
सबकी निकाई सुघराई मोदादायी महा,
ललित लुनाई उस छवि में समाई है॥ ५॥

तेजधारियों में है कृशानु का भी मान बड़ा,
किन्तु भानु सबसे महान तेजवान है।

पादपों में पारिजात, पर्वतों में हिमवान,

नदियों में जाह्नवी मनोज्ञता की खान है।

मोर-सा मनोहर न कोई खग रूपवान,

फूल कौन दूसरा गुलाब के समान है।

यद्यपि सभी हैं उपमान इन्हें मान चुके,

किन्तु उस छवि-सा न कोई छविमान है ॥ ६ ॥

वन-उपवन में, सरोज में, सरोवर में,

सुमन-सुमन में, उसी की सुघराई है।

चम्पक चमेलियों में, नवल नवेलियों में,

ललित लताओं मे भी उसकी लुनाई है।

देख पड़ती है रंग-रंग के विहङ्गमों में,

सुषमा उसी की कुंज-कुंज में समाई है।

सब ठौर देखो, वह छवि दिखलाई देती,

उर में समाई तथा लोचनों में छाई है ॥ ७ ॥

वियोगी हरि

वीर-बत्तीसी

जयतु कंस-करि-केहरी ! मधु-रिपु ! केशी-काल !
कालिय-मद-मर्दन ! हरे ! केशव ! कृष्ण कृपाल ॥ १ ॥

आदि मध्य अवसान हूँ जामें उदित उछाह।
सुरस वीर इकरस सदा सुभग सर्वरस-नाह ॥ २ ॥

खंड-खंड ह्वै जाय वरु देतु न पाछें पेड़।
लरत सूरमा खेत की मरत न छाँड़तु मेंड़ ॥ ३ ॥

खल-खंडन, मंडन,-सुजन, सरल, सुहृद, सविवेक।
गुण-गँभीर, रण-सूरमा मिलतु लाख में एक ॥ ४ ॥

मुँहमाँगे रण-सूरमा देतु दान पर-हेतु।
सीस-दान हूँ देतु पै पीठि-दान नहि देतु ॥ ५ ॥

दया-धर्म जान्यौ तुहीं सब धर्मनु कौ सार।
नृप शिबि ! तेरे दान पै वलि हूँ वलि सौ वार ॥ ६ ॥

दल्यौ अहिंसा-अस्त्र लै दनुज दुःख करि युद्ध।
अजय-मोह-गज-केसरी जयतु तथागत बुद्ध ॥ ७ ॥

मृत-रोहित-पट-दानु लै धार्यौ धर्म अमन्द।
खड्ग-धार-व्रत-धीर, धनि सत्य-वीर हरिचन्द ॥ ८ ॥

किधौं उच्च हिम-शृंग-वर किधौं जलधि गंभीर।
किधौं अटल ध्रुव-धाम के दान-वीर मति-धीर ॥ ९ ॥

सुरतरु लै कीजै कहा अरु चिन्तामणि-ढेरु।
इक दधीचि की अस्थि पै वारिय कोटि सुमेरु॥ १० ॥
केसरिया बागो पहिरि, कर कंकण, उर माल।
रण-दूलह! वरि लाइयौ दुलहिन विजय-सुबाल॥ ११ ॥
धनि धनि, सो सुकृती व्रती, सूर-सूर, सतसंध।
खड्ग खोलि खुलि खेत पै खेलतु जासु कबंध॥ १२ ॥
लरतु काल सों लाख में कोई माई कौ लाल।
कहु, केते करवाल कों करत कंठ-कलमाल॥ १३ ॥
रण-सुभट्ट वै भुट्ट-लौं गहि असि कट्टत मुंड।
उठि कवंध जुट्टत कहूँ, कहुँ लुट्टत रिपु-रुंड॥ १४ ॥
लोहित-लथपथ देखिकैं खंड-खंड तन-त्रान।
निकसत हुलसत युद्ध में वड़भागिनु के प्रान॥ १५ ॥
कादर तौ जीवित मरत दिन में बार हजार।
प्रान-पखेरू वीर के उड़त एक हीं बार॥ १६ ॥
जगी जोति जहँ जूझ की खगी खड्ग खुलि भूमि।
रँगी रुधिर सों धूरि, सो धन्य धन्य रण-भूमि॥ १७ ॥
अनल-कुंड, असि-धार, कै रकत-रँग्यौ रण-खेत।
त्रय तीरथ तारण-तरण छिति छत्रिय-त्रिय-हेत॥ १८ ॥
सुभट-सीस-सोनित-सनी समर-भूमि! धनि-धन्य।
नहिं तो सम तारण-तरण त्रिभुवन तीरथ अन्य॥ १९ ॥
नमो-नमो कुरु-खेत! तुव महिमा अकथ अनूप।
कण-कण तेरो लेखियतु सहस-तीर्थ-प्रतिरूप॥ २० ॥

बोय सीसु सींच्यौ सदा हृदय-रक्त रण-खेत।
वीर-कृषक कीरति लही करी मही जस-सेत ॥ २१ ॥

हिन्दू-कवि, हिन्दुवान-कवि, हिन्दी-कवि रसकंद।
सुकवि, महाकवि, सिद्धकवि, धन्य धन्य कवि चन्द ॥ २२ ॥

सिवा-सुजस-सरसिज-सुरस-मधुकर मत्त अनन्य।
रस-भूषण-भूषण, सुकवि-भूषण, भूषण धन्य ॥ २३ ॥

लहरति चमकति चाव सों तुव तरवार अनूप।
धाय डसति, चौंधति चखनु, नागिनि दामिनि रूप ॥ २४ ॥

वह शकुन्तला-लाड़िलो कबतें माँगतु रोय।
"खड्ग-खिलौना खेलिबे अबहिं लाइ दै मोय" ॥ २५ ॥

कह्यौ माय मुख चूमिकैं कर गहाय करवाल।
"जनि लजाइयौ दूध मो पयोधरनु कौ लाल ! ॥ २६ ॥

चूर-चूर ह्वै अंत लौं रखियौ कुल की लाज।
जननि-दूध-पितु-खड्ग की अहै परिच्छा आज" ॥ २७ ॥

गावत गायक बीन लै विरही राग विहाग।
नाहिं अलापत आजु क्यों मंगल मारू राग ॥ २८ ॥

लावत रँगि रँगरेज ! क्यो पगिया रंग-विरंग ?
अब तौ, बस, भावतु वहै सुंदर रंग सुरंग ॥ २९ ॥

जियत बाघ की पीठि पै धनु-धारीतु चढ़ाय।
क्यों न, चितेरे ! चित्र तूँ उमँगि उतारत आय ? ॥ ३० ॥

प्रकृति-वीर कौ अंतहूँ परतु मंद नहिं तेज।
नहि चाहतु चंदन-चिता भीष्म छाँड़ि सर-सेज ॥ ३१ ॥

मिली हमें थर्मोपिली* ठौर-ठौर चहुँपास।
लेखिय राजस्थान में लाखनु ल्यूनीडास† ॥ ३२ ॥

बीर-बाहु

समर-प्रमत्त कैधौं द्विरद-दुरूह-सुंड,
उद्धत अरुद्ध क्रुद्ध तत्तक धौं युग्मचंड।
मथन समोद रौद्र-उदधि कराल कैधौं,
मंदर अमंद, कै पुरंदर के बज्र बंड।
प्रबल महान मान-मंडन घमंड-युक्त,
युद्ध-मध्य खंडन अखंड खल खंड-खंड।
छत्र-दंड दीनन को, दुष्टन कों काल-दंड,
अतुल उदंड बीर! तेरे बर बाहु-दंड ॥ १ ॥

प्रलय अकाल ह्वैहै धरनि पताल जैहै,
दसहु दिसान में कृसानु कोपि दैहै दाहु।
मलिन दिनेस ह्वैहै धाय नखतेसहू कों,
लपकि सुलीलि जैहै प्रखर प्रताप-राहु।
रुधिर विभोर युद्ध-कालिका कलोल-भरी,
सुभट-सुमुंडन की धारि माल लैहै लाहु।

---

* यूनान देश की एक इतिहास-प्रसिद्ध घाटी। —सं०

† प्राचीन यूनान का एक सुप्रसिद्ध वीर। —सं०

करब कहा धौं आज एरे रणमत्त ! तेरे
फरकि उठे हैं फेरि वे ही क्रांतिकारी बाहु ॥ २ ॥

अधम अधर्म-मत्त म्लेच्छ आततायिन के
सीस भूरि भंजिबे को एही एक गाज है ।
निपट निसंक जन्म रंकन को राज एही,
माथ पै अनाथन के एही एक ताज है ।
रायगढ़-ईस ! बिसे बीस लागी याही ठावँ,
आर्य-धर्मधारिन औ नारिन की लाज है ।
निबल उधारिबे कों आज हिंद-तारिबे कों
साहि के सपूत ! तेरी बाँह ए जहाज है ॥ ३ ॥

नाचि-नाचि निलज नवेलिन के संग नीच,
हाय-हाय, ऐसे भुज-दंड क्यों लजावै रे ।
हृदय लगाय दीन-दलित, अनाथ-माथ
सदय सुबाँह-छत्र-छाँह क्यों न छावै रे ।
गेरि-गेरि कामिनि के कंठ वीर बाहुन कों,
मानिकैं मृणाल मंजु माल क्यों बनावै रे ।
अमित अधर्म देखि-देखि हू अनीति अंध,
कुलिस-कठोर क्यों न बाहु तू उठावै रे ॥ ४ ॥

बाहु तौ सराहिए प्रताप रन-बाँकुरे के,
खड़्ग चढ़ाए खल-सीस जिन खेलि-खेलि ।
बाहु तौ सराहिए समर्थ सिवराजजू के,
सहज स्वराज फेरि थाप्यौ रिपु ठेलि-ठेलि ।

बाहु तौ सराहिए गोविन्द बीर-केसरी के,

.यवन कृतांत-कुंड होमे जिन मेलि-मेलि।

बाहु तौ सराहिए बुँदेल छत्रसालजू के,

मुग़ल मरोरि मींजि डारे जिन पेलि-पेलि ॥ ५ ॥

मसकि मरोरि फोरि-फोरि शत्रु-बज्र-सीस

समर-सुरंग-फाग खेली जिन साजि साज।

आर्य-कुल-नारिन की, खड्ग-व्रतधारिन की

लोक-लोक साखी थापि राखी जिन धर्म-लाज।

सबल-सनाथन पै गाज-से गिरे जे आय,

अबल-अनाथन के माथे के बने हैं ताज।

सहित उछाहु भेंटि-भेंटि बीर-बाहु ऐसे,

हृदय चढ़ाय प्रेम-आरती उतारौ आज ॥ ६ ॥

सुमित्रानन्दन पन्त

बादल

सुरपति के हम ही हैं अनुचर,
जगत्प्राण के भी सहचर;
मेघदूत की सजल कल्पना,
चातक के चिर-जीवनधर;

मुग्ध शिखी के नृत्य मनोहर,
सुभग स्वाति के मुक्ताकर;
विहग-वर्ग के गर्भ-विधायक,
कृषक-बालिका के जलधर।

जलाशयों में कमलदलों-सा
हमें खिलाता नित दिनकर,
पर बालक-सा वायु सकल दल
बिखरा देता चुन सत्वर;

लघु लहरों के चल पलनों में
हमें झुलाता जब सागर,
वही चील-सा झपट, बाँह गह,
हमको ले जाता ऊपर।

भूमि-गर्भ में छिप विहङ्ग-से,
फैला कोमल रोमिल पङ्ख,
हम असंख्य अस्फुट बीजो में
सेते साँस, छुड़ा जड़ पङ्क,

विपुल कल्पना से त्रिभुवन की
विविध रूप धर, भर नभ-अङ्क
हम फिर क्रीड़ा-कौतुक करते,
छा अनन्त-उर में निःशङ्क।

कभी चौकड़ी भरते मृग-से
भू पर चरण नहीं धरते,
मत्त मतङ्गज कभी झूमते,
सजग शशक नभ को चरते;

कभी कीश-से अनिल-डाल मे
नीरवता से मुँह भरते,
बृहत्-गृद्ध-से विहग-छदों को
बिखराते नभ में तरते।

कभी अचानक भूतों का-सा
प्रकटा विकट महा-आकार,
कड़क, कड़क, जब हँसते हम सब,
थर्रा उठता है संसार;

फिर परियों के बच्चों-से हम
सुभग सीप के पङ्ख पसार,
समुद पैरते शुचि-ज्योत्स्ना में,
पकड़ इन्दु के कर सुकुमार।

अनिल-विलोड़ित गगन-सिन्धु में
प्रलय-बाढ़-से चारों ओर
उमड़ उमड़ हम लहराते हैं
बरसा उपल, तिमिर घनघोर;

बात बात में, तूल-तोम-सा
व्योम-विटप से झटक, झकोर,
हमें उड़ा ले जाता जब द्रुत
दल-बल-युत घुस बातुल-चोर।

बुद्बुद्-द्युति तारक-दल-तरलित
तम के यमुना-जल में श्याम
हम विशाल जम्बाल-जाल-से
बहते हैं अमूल, अविराम;

दमयन्ती-सी कुमुद-कला के
रजत-करों में फिर अभिराम
स्वर्ण-हंस-से हम मृदु ध्वनि कर,
कहते प्रिय-सन्देश, ललाम।

दुहरा विद्युद्दाम चढ़ा द्रुत,
इंद्र-धनुष की कर टङ्कार;
विकट पटह-से निर्घोषित हो,
बरसा विशिखों-सा आसार;

चूर्ण चूर्ण कर वज्रायुध से
भूधर को, अति भीमाकार
मदोन्मत्त वासव-सेना-से
करते हम नित वायु-विहार।

स्वर्ण-भृंग-तारावलि वेष्टित,
गुञ्जित, पुञ्जित, तरल, रसाल,
मधुगृह-से हम गगन-पटल में
लटके रहते विपुल विशाल;

जालिक-सा आ अनिल, हमारा
नील-सलिल में फैला जाल,
उन्हें फाँस लेता फिर सहसा
मीनों के-से चञ्चल बाल।

व्योम-विपिन मे जब वसन्त-सा
खिलता नव-पल्लवित प्रभात
बहते हम तब अनिल-स्रोत में
गिर तमाल-तम के-से पात;

उदयाचल से बाल-हंस फिर
उड़ता अम्बर में अवदात,
फैल स्वर्ण-पङ्खों से हम भी
करते द्रुत मारुत से बात।

सन्ध्या का मादक पराग पी,
झूम मलिन्दों-से अभिराम,
नभ के नील-कमल में निर्भय
करते हम विमुग्ध विश्राम;

फिर बाड़व-से सान्ध्य सिन्धु में
सुलग, सोख उसको अविराम,
बिखरा देते तारावलि-से
नभ में उसके रत्न निकाम।

धीरे धीरे संशय से उठ,
बढ़ अपयश से शीघ्र अछोर,
नभ के उर में उमड़ मोह से
फैल लालसा से निशि-भोर;

इन्द्रचाप सी व्योम-भृकुटि पर
लटक मौन-चिन्ता से घोर,
घोष-भरे विप्लव-भय से हम
छा जाते द्रुत चारों ओर।

पर्वत से लघु धूलि, धूलि से
पर्वत बन, पल में, साकार—
काल-चक्र-से चढ़ते, गिरते,
पल में जलधर, फिर जल-धार;

कभी हवा में महल बनाकर,
सेतु बाँधकर कभी अपार,
हम विलीन हो जाते सहसा
विभव-भूति ही-से निस्सार।

नभ गगन की शाखाओं में
फैला मकड़ी का-सा जाल,
अम्बर के उड़ते पतङ्ग को
उलझा लेते हम तत्काल;

फिर अनन्त-उर की करुणा से
त्वरित द्रवित होकर, उत्ताल—
आतप में मूर्छित कलियों को
जाग्रत करते हिम-जल डाल।

हम सागर के धवल हास हैं,
जल के धूम, गगन की धूल,
अनिल-फेन, ऊषा के पल्लव,
वारि-वसन, वसुधा के मूल;

नभ में अवनि, अवनि में अम्बर,
सलिल-भस्म, मारुत के फूल,
हम ही जल में थल, थल में जल,
दिन के तम, पावक के तूल।

व्योम-बेलि, ताराओं की गति,
चलते-अचल, गगन के गान,
हम अपलक तारों की तन्द्रा,
ज्योत्स्ना के हिम, शशि के यान;

पवन-धेनु, रवि के पांशुल श्रम,
सलिल-अनल के विरल वितान,
व्योम-पलक, जल-खग, बहते-थल,
अम्बुधि की कल्पना महान।

धूम-धुँआरे, काजर-कारे,
हम ही बिकरारे बादर,
मदन-राज के वीर बहादर,
पावस के उड़ते फणिधर;

चमक-झमकमय मंत्र वशीकर,
छहर-घहरमय विष-सीकर,
स्वर्ग-सेतु-से इन्द्रधनुष-धर,
कामरूप घनश्याम अमर।

सुभद्राकुमारी चौहान

मेरा नया बचपन

बार बार आती है मुझको मधुर याद बचपन तेरी।
गया, ले गया तू जीवन की सबसे मस्त ख़ुशी मेरी॥
चिन्ता-रहित खेलना-खाना, वह फिरना निर्भय स्वच्छन्द।
कैसे भूला जा सकता है बचपन का अतुलित आनन्द? ॥
ऊँच-नीच का ज्ञान नहीं था, छुआ-छूत किसने जानी ?
बनी हुई थी अहा! झोंपड़ी और चीथड़ों में रानी॥
किये दूध के कुल्ले मैंने, चूस अँगूठा अमृत पिया।
किलकारी कल्लोल मचाकर सूना घर आबाद किया॥
रोना और मचल जाना भी क्या आनंद दिखाते थे!
बड़े-बड़े मोती-से आँसू जयमाला पहनाते थे॥
मैं रोई, माँ काम छोड़कर आई, मुझको उठा लिया।
झाड़-पोंछकर चूम-चूम गीले गालों को सुखा दिया॥
दादा ने चन्दा दिखलाया, नेत्र-नीर द्रुत दमक उठे।
धुली हुई मुसकान देखकर सबके चेहरे चमक उठे॥
वह सुख का साम्राज्य छोड़कर मैं मतवाली बड़ी हुई।
लुटी हुई, कुछ ठगी हुई-सी, दौड़ द्वार पर खड़ी हुई॥
लाज-भरी आँखें थीं मेरी, मन में उमँग रँगीली थी।
तान रसीली थी कानों में, चंचल छैल छबीली थी॥

दिल में एक चुभन-सी थी, यह दुनिया सब अलबेली थी।
मन में एक पहेली थी, मैं सबके बीच अकेली थी॥
मिला, खोजती थी जिसको, हे बचपन! ठगा दिया तूने।
अरे! जवानी के फन्दे में मुझको फँसा दिया तूने॥
सब गलियाँ उसकी भी देखीं, उसकी खुशियाँ न्यारी हैं।
प्यारी-प्रीतम की रँगरलियों की भी स्मृतियाँ प्यारी हैं॥
माना मैंने युवा-काल का जीवन खूब निराला है।
आकांक्षा, पुरुषार्थ, ज्ञान का उदय मोहनेवाला है॥
किन्तु यहाँ झंझट है भारी, युद्ध-क्षेत्र संसार बना॥
चिन्ता के चक्कर में पड़कर जीवन भी है भार बना॥
आजा बचपन! एक बार फिर दे दे अपनी निर्मल शान्ति।
व्याकुल व्यथा मिटानेवाली वह अपनी प्राकृत विश्रान्ति॥
वह भोली-सी मधुर सरलता, वह प्यारा जीवन निष्पाप।
क्या फिर आकर मिटा सकेगा तू मेरे मन का संताप?॥
मैं बचपन को बुला रही थी, बोल उठी बिटिया मेरी।
नंदन वन-सी फूल उठी यह छोटी-सी कुटिया मेरी॥
"माँ ओ" कहकर बुला रही थी, मिट्टी खाकर आई थी॥
कुछ मुँह में कुछ लिये हाथ में मुझे खिलाने आई थी।
पुलक रहे थे अंग, दृगों में कौतूहल था छलक रहा॥
मुख पर थी आह्लाद-लालिमा, विजय-गर्व था झलक रहा॥
मैंने पूछा—'यह क्या लाई?' बोल उठी वह 'माँ, काओ'।
हुआ प्रफुल्लित हृदय खुशी से, मैंने कहा—'तुम्हीं खाओ'॥

पाया मैंने बचपन फिर से, बचपन बेटी बन आया ।
उसकी मंजुल मूर्ति देखकर मुझमें नवजीवन आया ॥
मैं भी उसके साथ खेलती, खाती हूँ तुतलाती हूँ ।
मिलकर उसके साथ स्वयं मैं भी बच्ची बन जाती हूँ ॥
जिसे खोजती थी बरसों से, अब जाकर उसको पाया ।
भाग गया था मुझे छोड़कर, वह बचपन फिर से आया ॥

ठुकरा दो या प्यार करो

देव ! तुम्हारे कई उपासक कई ढंग से आते हैं ।
सेवा में बहुमूल्य भेंट वे कई रंग के लाते हैं ॥
धूमधाम से, साजबाज से मंदिर में वे आते हैं ।
मुक्ता-मणि बहुमूल्य वस्तुएँ लाकर तुम्हें चढ़ाते हैं ॥
मैं ही हूँ ग़रीबिनी ऐसी, जो कुछ साथ नहीं लाई ।
फिर भी साहस कर मंदिर में पूजा करने को आई ॥
धूप-दीप-नैवेद्य नहीं है, झाँकी का शृङ्गार नहीं ।
हाय ! गले में पहनाने को फूलों का भी हार नहीं ॥
मैं कैसे स्तुति करूँ तुम्हारी, है स्वर में माधुर्य नहीं ।
मन का भाव प्रकट करने को वाणी में चातुर्य नहीं ॥
नहीं दान है, नहीं दक्षिणा, खाली हाथ चली आई ।
पूजा की विधि नहीं जानती, फिर भी नाथ ! चली आई ॥

पूजा और पुजापा प्रभुवर ! इसी पुजारिन को समझो ।
दान-दक्षिणा और निछावर इसी भिखारिन को समझो ॥
मैं उन्मत्त, प्रेम का लोभी हृदय दिखाने आई हूँ ।
जो कुछ है, बस यही पास है, इसे चढ़ाने आई हूँ ॥
चरणों पर अर्पण है, इसको चाहो तो स्वीकार करो ।
यह तो वस्तु तुम्हारी ही है, ठुकरा दो या प्यार करो ॥

फूल के प्रति

डाल पर के मुरझाये फूल ! हृदय में मत कर वृथा गुमान ।
नहीं हैं सुमन कुंज में अभी, इसी से है तेरा सन्मान ॥
मधुप जो करते अनुनय विनय बने तेरे चरणों के दास ।
नई कलियों को खिलती देख नहीं आवेंगे तेरे पास ॥
सहेगा वह कैसे अपमान ? उठेगा वृथा हृदय में शूल ।
भुलावा है, मत करना गर्व, डाल पर के मुरझाये फूल !!

महादेवी वर्मा

उस पार

घोर तम छाया चारों ओर
    घटाएँ घिर आईं घनघोर;
वेग मारुत का है प्रतिकूल
    हिले जाते हैं पर्वतमूल;
गरजता सागर बारम्बार,
        कौन पहुँचा देगा उस पार ?

तरङ्गें उठीं पर्वताकार
    भयंकर करतीं हाहाकार;
अरे उनके फेनिल उच्छ्वास
    तरी का करते हैं उपहास;
हाथ से गई छूट पतवार,
        कौन पहुँचा देगा उस पार ?

ग्रास करने नौका, स्वच्छन्द
    घूमते फिरते जलचर-वृन्द;
देखकर काला सिन्धु अनन्त
    हो गया हा साहस का अन्त !
तरङ्गें हैं उत्ताल अपार,
        कौन पहुँचा देगा उस पार ?

बुझ गया वह नक्षत्र-प्रकाश
चमकती जिसमें मेरी आश;
रैन बोली सज कृष्ण दुकूल
विसर्जन करो मनोरथ फूल;
न लाये कोई कर्णाधार,
कौन पहुँचा देगा उस पार ?

सुना था मैंने इसके पार
बसा है सोने का संसार;
जहाँ के हँसते विहग ललाम
मृत्यु छाया का सुनकर नाम;
धरा का है अनन्त शृङ्गार,
कौन पहुँचा देगा उस पार ?

जहाँ के निर्झर नीरव गान
सुना करते अमरत्व प्रदान;
सुनाता नभ अनन्त झङ्कार
बजा देता है सारे तार;
भरा जिसमें असीम-सा प्यार,
कौन पहुँचा देगा उस पार ?

पुष्प में है अनन्त मुस्कान
    त्याग का है मारुत में गान;
सभी में है स्वर्गीय विकाश
    वही कोमल कमनीय प्रकाश,
दूर कितना है वह संसार !
                    कौन पहुँचा देगा उस पार ?

× × × ×

सुनाई किसने पल में आन
    कान में मधुमय मोहक तान ?
'तरी को ले जाओ मँझधार
    डूबकर हो जाओगे पार;
विसर्जन ही है कर्णाधार,
                    वही पहुँचा देगा उस पार।'

राय कृष्णदास

चातक

पंछी जग केते दई दई जिन्हे रूपरासि,
सुरहू दिए हैं हठि हियो जौन छोरि लेत।
भावै पै न मोहि कोउ इतो जितो चातक जो
आपनी पुकार ही में आपुनो दरस देत॥
आजु लौं न पेख्यों जाहि कैसो रूप कैसो रंग,
है अराल कै कराल जानै किधों स्याम-सेत।
पूरन पढ़ी पै जाने पाटी प्रेम की पुनीत,
जानत जो रीत कैसें जात है निवाह्यो हेत॥

समर्थन

खूब किया, जो तुमने इसको ला पिंजड़े में बंद किया।
चारा चुगने को बेचारा,
दर-दर फिरता मारा-मारा,
दूध-भात बैठा खाता है, आहा! क्या आनंद दिया;
तरु-कोटर-वासी निरीह को स्वर्णासन-आसीन किया।
वन-विहंग को सुजन बनाया,
बातचीत करना सिखलाया,
राम-नाम का मज़ा चखाया, अमर किया, स्वाधीन किया।

वेणु की विनती

भृंग, गुंजरित भृंग, तनिक यह मेरी विनती कान धरो ।
बस, तुम मेरा हृदय बेध दो, फिर गुन-गुन-गुन-गान करो ॥
यह क्या कहा, क्रूरता होगी; नहीं, अतीव दया होगी ।
छिद्र-पूर्ण होने पर भी मैं हूँगा दुर्लभ सुख-भोगी ॥
उन रन्ध्रों में वह मारुत वह प्रियतम का निश्वास भरे ।
स्वर से मेरे शून्य हृदय की व्यथा-कथा जो व्यक्त करे ॥
धारण किये हुए मैं जिसको मर्मर करके भरता हूँ ।
ध्यान नहीं देता कोई भी लाख यत्न मैं करता हूँ ॥
तुम मधुकर हो, दया-मया कर मुझको यह मधु-दान करो ।
भृंग, गुंजरित भृंग, तनिक यह मेरी विनती कान धरो ॥

पदस्थ

चाह मुझको है नहीं स्वर्ण बन जाने की ।
यद्यपि हूँ जानता कि कंचन हो पाऊँ तो
मौलि का तुम्हारे अलङ्कार बन जाने की,
बात क्या, सरूपता तुम्हारी मिल जायगी;

अहोभाग्य धन्य हो नगण्य यह जन, पै
हाय ! हिया क्षुद्र इसका तो है सिहरता
कसने के साथ ही कसौटी पै, कनक की
कान्ति,-भ्रान्ति क्षणदा-छटा की घटा श्याम पै,-
कौंध उठती है जहाँ, हाय ! वहीं अपना
एक अंग खोके और होके अनुत्तीर्ण भी
पारखी ! तुम्हारी उस प्रथम परीक्षा में
पड़ता है पतित तुम्हारे पद में पुनः
इसका निसर्ग-स्थान प्राणनाथ था जहाँ
उठके जहाँ से इस धूलिकण ने प्रभो !
होड़ की थी हाटक की, हाँ हाँ उस हेम की,—
कौन कसे जाने की कहे जो ताप ताड़ना—
छेदनादि को भी खेल में हो झेल लेता है,—
पाया उसका जो स्वाद याद सदा रक्खेगा !
किन्तु अब है हुआ पदस्थ, अब तो इसे
कामद पदारविन्द का पराग होने दो;
मधुर मरन्द से उसी के सदानन्द हो ॥

जयशङ्कर 'प्रसाद'

भारत-महिमा

हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार।
उषा ने हँस अभिनन्दन किया और पहनाया हीरक-हार॥
जगे हम, लगे जगाने विश्व लोक में फैला फिर आलोक।
व्योम-तम-पुञ्ज हुआ तब नष्ट, अखिल संसृति हो उठी अशोक॥
विमल वाणी ने वीणा ली कमल-कोमल-कर में सप्रीत।
सप्तस्वर सप्तसिन्धु में उठे, छिड़ा तब मधुर साम-सङ्गीत॥
बचाकर बीज-रूप से सृष्टि, नाव पर झेल प्रलय का शीत।
अरुण-केतन लेकर निज हाथ वरुण-पथ में हम बढ़े अभीत॥
सुना है दधीचि का वह त्याग—हमारी जातीयता-विकास।
पुरन्दर ने पवि से है लिखा अस्थि-युग का मेरे इतिहास॥
सिन्धु-सा विस्तृत और अथाह एक निर्वासित का उत्साह।
दे रही अभी दिखाई भग्न मग्न रत्नाकर में वह राह॥
धर्म का ले-लेकर जो नाम हुआ करती बलि, कर दी बन्द।
हमीं ने दिया शान्ति-सन्देश, सुखी होते देकर आनन्द॥
विजय केवल लोहे की नहीं, धर्म की रही धरा पर धूम।
भिक्षु होकर रहते सम्राट्, दया दिखलाते घर-घर घूम॥
यवन को दिया दया का दान, चीन को मिली धर्म की दृष्टि।
मिला था स्वर्ण-भूमि को रत्न, शील की सिंहल को भी सृष्टि॥

किसी का हमने छीना नहीं, प्रकृति का रहा पालना यहीं।
हमारी जन्म-भूमि थी यही, कहीं से हम आये थे नहीं॥
जातियों का उत्थान-पतन, आँधियाँ, झड़ी, प्रचंड समीर।
खड़े देखा, झेला हँसते, प्रलय में पले हुए हम वीर॥
चरित थे पूत, भुजा में शक्ति, नम्रता रही सदा सम्पन्न।
हृदय के गौरव में था गर्व, किसी को देख न सके विपन्न॥
हमारे सञ्चय में था दान, अतिथि थे सदा हमारे देव।
वचन में सत्य, हृदय में तेज, प्रतिज्ञा में रहती थी टेव॥
वही है रक्त, वही है देश, वही साहस है, वैसा ज्ञान।
वही है शान्ति, वही है शक्ति, वही हम दिव्य आर्य-सन्तान॥
जियें तो सदा उसी के लिये, यही अभिमान रहे, यह हर्ष।
निछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष॥

परिशिष्ट

कवि-परिचय

कबीर—
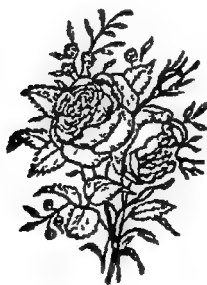
कबीर साहब का जन्म काशी के पास विक्रम संवत् १४५६ में हुआ था। ये जाति के जुलाहे थे। इनके पिता का नाम नीरू और माता का नीमा बतलाया जाता है। काशी में साधु-सन्तों के समागम से कबीर साहब के हृदय में वैराग्य के भाव जमने लगे। इन्होंने स्वामी रामानन्दजी को अपना गुरु बनाया। उस समय स्वामी रामानन्द का प्रभाव खूब बढ़ रहा था और छोटे-बड़े, ऊँच-नीच सब उनके उपदेशामृत से तृप्त हो रहे थे। कबीर ने अपने नाम से कबीर-पन्थ चलाया, जिसमें सूफ़ी-धर्म और वेदान्त के आधार पर सब धर्मों की एकता सिद्ध की गई। इनके शिक्षा-वचनों का संग्रह 'बीजक' ग्रन्थ में हुआ है, जिसके मुख्य भाग हैं—साखी, सबद और रमैणी। हिन्दू मुसलमान दोनों ने इनके भावपूर्ण उपदेशों से शिक्षा ग्रहण की। शिक्षित न होने पर भी ये अपने सिद्धान्त के बहुत पक्के थे और हिन्दू-मुसलमानों को उनकी कुरीतियों के लिए फटकारते थे। यद्यपि इनकी कविता में कहीं-कहीं ऊटपटाँग भाषा है, किन्तु भाव बहुत स्पष्ट हैं और धर्म्म के गूढ़ तत्त्व बड़े सरल ढङ्ग से समझाये गये हैं। कबीर निर्गुण धारा की ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि हैं। इनका मृत्युकाल विक्रम संवत् १५७५ माना जाता है।

मलिक मुहम्मद जायसी—

मलिक मुहम्मद प्रसिद्ध सूफ़ी फ़क़ीर शेख़ मोहिउद्दीन के शिष्य थे। अवध प्रान्त के जायस गाँव के निवासी होने से ये 'जायसी' कहलाए। इनके जन्म-मरण का ठीक समय निश्चित नहीं है। ये प्रेममार्गी सूफ़ी शाखा के मुख्य कवि हैं। इन्होंने शेरशाह सूर के राज्य-समय वि० सं० १५९७ में अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पद्मावत' लिखा। 'पद्मावत' में चित्तौड़ के राजा

रतनसेन और सिंहल की राजकुमारी पद्मावती के विवाह तथा पद्मावती के लिये सुलतान अलाउद्दीन खिलजी की चित्तौड़ की चढ़ाई आदि का वर्णन है। ठेठ अवधी भाषा में दोहा-चौपाइयों में रचे हुए इस प्रबन्ध-काव्य में सांसारिक प्रेम के दृष्टान्तों से परमात्मा के प्रेम का दिग्दर्शन हुआ है। 'पद्मावत' की कविता स्वाभाविकता और गम्भीर भावों से व्याप्त है। सुप्रसिद्ध साहित्यालोचक प्रो० रामचन्द्रजी शुक्ल के मतानुसार जायसी ने मुसलमान होकर हिन्दुओं की कहानियाँ हिन्दुओं ही की बोली में पूरी सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शिनी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखाया। 'पद्मावत' के सिवा जायसी ने 'अखरावट' नाम का एक वेदान्त-विषयक ग्रन्थ भी लिखा। निस्सन्देह हिन्दी-साहित्य में जायसी का एक विशेष स्थान है। 'गोरा की वीर गति' जायसी के 'पद्मावत' का एक अंश है।

महात्मा सूरदास—

इनका जन्म विक्रम संवत् १५४० के लगभग आगरा और मथुरा के मार्ग में रुनकता गाँव के एक सारस्वत ब्राह्मण-कुल में हुआ था। इनके छः भाई मुसलमानों के साथ युद्ध में मारे गये। केवल यही शेष रह गये। नेत्रहीन होने के कारण ये युद्ध में नहीं जा सकते थे, इसलिये ये इधर-उधर घूमते रहे। एक बार आप कुएँ में गिर पड़े और वहीं छः दिन तक पड़े रहे। अन्त में दीनदयालु भगवान् ने कृष्ण-रूप में प्रकट होकर, इन्हें दृष्टि प्रदान कर अपने रूप का दर्शन कराया और कुएँ से बाहर निकाला। सूरदासजी ने वर माँगा कि जिन नेत्रों से मैंने भगवान् का रूप देखा, उनसे और कोई वस्तु न देखूँ और हृदय में सदा आपका ध्यान बना रहे। इसी से सूरदासजी फिर प्रज्ञाचक्षु हो गये और अपने प्रभु की लीलाभूमि व्रज में निवास करने लगे। सूर उच्च कोटि के भक्त कवि हैं। ऐसी प्रसिद्धि है कि आपने सवा लाख पदों की रचना की थी, पर अब तक लगभग ५-६ हज़ार पद मिले हैं, जिनका संग्रह 'सूरसागर' में हुआ है। श्रीवल्लभाचार्य्यजी के पुत्र गोसाईं विट्ठलनाथजी ने सूरदासजी

को आठ श्रेष्ठ कृष्णभक्त कवियों में; जो अष्टछाप में गिने जाते हैं, सर्वप्रथम स्थान दिया है। सूरदासजी की कविता का मुख्य विषय है श्रीकृष्णलीला, जिसमें बालळीला, राधाकृष्ण-प्रेम और गोपी-विरह आदि का सविस्तर एवं सुन्दर वर्णन है। आपकी कविता स्वाभाविकता और सरसता से ओतप्रोत है। जिस तरह कबीर के काव्य में ज्ञान की प्रधानता है, उसी तरह सूरदास मे भक्ति की पराकाष्ठा देख पड़ती है। सूरदासजी ब्रजभाषा के तथा वात्सल्य और वियोग-शृङ्गार रसों के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं; इसी से 'सूर सूर तुलसी ससी, उडुगन केशवदास' यह लोकोक्ति अब तक प्रचलित है। इनका स्वर्गवास वि० सं० १६२० में हुआ। 'विनय-वाणी' आदि सब पद 'सूरसागर' से लिये गये हैं।

अष्टछाप के कवि—

वि० सं० १५८७ में वैष्णव धर्म के विख्यात प्रवर्त्तक और शुद्धाद्वैतवाद के संस्थापक श्रीवल्लभाचार्य्यजी का गोलोकवास होने के पश्चात् उनके पुत्र गोसाइं विट्ठलनाथजी ने अपने समय तक के, सुन्दर-सुन्दर पदों की रचना करनेवाले, पुष्टिमार्ग के अनेक उत्कृष्ट कवियों में से आठ सर्वोत्तम कवियों को चुनकर 'अष्टछाप' की प्रतिष्ठा की। सूरदास, कुम्भनदास, परमानन्ददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी, चतुर्भुजदास और नन्ददास अष्टछाप के कवि हैं। इनकी रचनाएँ 'मिश्रबन्धुविनोद' से ली गई हैं।

परमानन्ददास—ये वल्लभाचार्यजी के शिष्य थे। वि० सं० १६०६ के आसपास कन्नौज में रहने से ये कान्यकुब्ज माने जाते हैं। इन्होंने तन्मयतापूर्वक सरस काव्य-रचना की है। जनश्रुति के अनुसार एक बार इनके किसी पद को सुनकर वल्लभाचार्यजी कई दिनों तक अपने तन की सुध भूले रहे। हस्तलिखित हिन्दी-पुस्तकों की खोज में इनके पदों का एक संग्रह तथा 'ध्रुवचरित्र' और 'दानलीला' नामक ग्रन्थ मिले हैं।

कुम्भनदास—ये परमानन्ददास के समसामयिक थे और धन, मान आदि की लालसा से कोसों दूर रहकर विरक्त जीवन बिताते थे। एक बार

अकबर बादशाह ने इन्हें फ़तहपुर सीकरी बुलाकर इनका यथेष्ट सम्मान किया, पर इन्हें उसका खेद ही बना रहा, जैसा कि इस पद से जान पड़ता है—

संतन का सिकरी सन काम ?
आवत जात पनहियाँ टूटीं, बिसरि गयो हरि-नाम ।
...... कुम्भनदास लाल गिरधर बिन और सबै बेकाम ॥

इनका कोई ग्रन्थ अब तक नहीं मिला, परन्तु इनके रचे हुए भगवान् कृष्ण की बाललीला और प्रेमलीला-सम्बन्धी फुटकर पद्य पाये जाते हैं ।

चतुर्भुजदास—चतुर्भुजदास कुम्भनदासजी के पुत्र और गोसाईं विट्ठलनाथजी के शिष्य थे । इनके तीन ग्रन्थ—'भक्ति-प्रताप', 'हितजू को मंगल' और 'द्वादशयश'—मिले हैं, जिनकी भाषा चलती और व्यवस्थित है । इनके स्फुट पद्य भी यत्र-तत्र पाये जाते हैं ।

नन्ददास—ये प्रायः सूरदासजी के समकालीन थे । इनका काव्यकाल सूरदास की मृत्यु के पीछे अथवा उसके कुछ आगे तक माना जाता है । अष्टछाप में सूरदासजी के पश्चात् इन्हीं का नाम उल्लेखनीय है । इन्होंने बहुत सरस एवं मधुर पद्य-रचना की है । इनके लिये यह उक्ति प्रसिद्ध है कि 'और कवि गढ़िया, नन्ददास जड़िया ।' इनका अतिप्रसिद्ध ग्रंथ 'रासपञ्चाध्यायी' है, जिसमें अनुप्रासादि-युक्त साहित्यिक भाषा में श्रीकृष्ण की रासलीला का सविस्तर वर्णन है । इन्होंने कोई १४ पुस्तकें लिखीं, किन्तु 'रासपञ्चाध्यायी' के सिवा केवल तीन—'भ्रमरगीत', 'अनेकार्थमञ्जरी' और 'अनेकार्थनाममाला'—प्रकाश में आई हैं, जिनमें 'भ्रमरगीत' की विशेष प्रसिद्धि है ।

गोविन्दस्वामी—ये अन्तरी-निवासी सनाढ्य ब्राह्मण थे जो विरक्त की तरह आकर महावन में रहने लगे । फिर गोसाईं विट्ठलनाथजी के शिष्य हुए । इनके सुन्दर पदों से प्रसन्न होकर गोसाईंजी ने इन्हें अष्टछाप में स्थान दिया । ये गोवर्धन पर्वत पर निवास करते थे । उसके समीप इनका लगाया हुआ कदम्बों का सुन्दर उपवन अब भी 'गोविन्दस्वामी की

कदम्बखंडी' कहलाता है । कवि होने के सिवा ये पक्के गवैये भी थे; तानसेन तक इनका गाना सुनने के लिये आया करते थे । इनका कविता-काल वि० सं० १६०० और १६२५ के बीच है ।

गोस्वामी तुलसीदासजी—

गोस्वामीजी का जन्म वि० सं० १५५४ में बाँदा ज़िले के राजापुर गाँव में सरयूपारीण ब्राह्मण-कुल में हुआ था । कोई इनका जन्म-संवत् १५८३ मानते हैं । इनका पहला नाम रामबोला और इनके माता-पिता का नाम क्रमशः हुलसी और आत्माराम था । जन्म के पश्चात् ही इनकी माता का देहान्त हो गया और पिता ने इन्हें छोड़ दिया । कुछ समय तक एक दासी ने इन्हें पाला; फिर नरहरिदास (अथवा नरहर्यानन्द) नामक महात्मा ने इन्हें अपने यहाँ रखकर इनके सब संस्कार किए और इनका नाम तुलसीदास रखा । इनसे गोस्वामीजी ने कई बार रामायण की कथा सुनी । फिर काशी में शेष सनातन नामक विद्वान् से इन्होंने विद्याध्ययन किया । तत्पश्चात् इनका विवाह हुआ । कहते हैं कि गोस्वामीजी अपनी स्त्री में अत्यन्त अनुरक्त थे; अतः इनकी अनुपस्थिति में एक बार उसके मायके चले जाने पर आप भी उसके पीछे-पीछे अपनी ससुराल को दौड़े गये । इसपर इनकी स्त्री ने इन्हें बहुत फटकारकर कहा कि मुझ में आपकी जितनी प्रीति है उतनी भगवान् श्रीराम में होती, तो आप भवबन्धन से मुक्त हो जाते । यह बात गोसाईंजी को चुभ गई और ये काशी आकर विरक्त हो गए । फिर लगभग बीस वर्ष तक इन्होंने सारे भारत का भ्रमण किया, और चित्रकूट, अयोध्या, काशी आदि में रहते हुए वि० सं० १६८० में काशी-पुरी में इनका स्वर्गवास हुआ ।

गोस्वामीजी हिन्दी के सबसे बड़े कवि माने जाते हैं । वस्तुतः तुलसी-दासजी के नाम से अपरिचित होना हिन्दी-साहित्य से अनभिज्ञ रहने के समान है । जिस प्रकार सूरदासजी कृष्ण के परम भक्त थे, उसी तरह गोस्वामीजी राम के अनन्य उपासक थे । गोस्वामीजी का 'रामचरितमानस'

अत्यन्त लोकप्रिय ग्रन्थ है। श्रीमद्भगवद्गीता के सिवा सारे भारतीय साहित्य में संभवतः ऐसा कोई ग्रंथ नहीं है जिसका रामचरितमानस की तरह प्रचार हुआ हो। पढ़े-लिखे या अपढ़, सभी को हिन्दू जाति के इस आदर्श धर्म-ग्रंथ की दोहा-चौपाइयाँ कण्ठ रहती हैं और कहावतों तथा धर्मवाक्यों की तरह उनका प्रयोग होता है। 'रामचरितमानस' में गोस्वामीजी ने सरल और मधुर अवधी भाषा की उत्कृष्ट कविता में श्रीराम का आदर्श चरित्र अङ्कित करके जातीय जीवन में नवजीवन का सञ्चार किया और मानव जाति के उच्च आदर्शों की स्थापना की। मनुष्य-जीवन की ऐसी कोई परिस्थिति नहीं है जिसका चित्रण इस ग्रन्थ-रत्न में न हुआ हो। गोस्वामीजी के अन्य ग्रन्थों में 'विनयपत्रिका', 'गीतावली', 'कवितावली', 'कृष्णगीतावली', 'दोहावली', 'बरवै रामायण' और 'तुलसी-सतसई' मुख्य हैं। तुलसीदासजी की कविता ब्रजभाषा और अवधी दोनों में हुई है और इनकी भाषा सरल, सुन्दर तथा व्यवस्थित है।

मीराँबाई—

मीराँबाई जोधपुर राज्य के संस्थापक राठोड़ जोधाजी की प्रपौत्री और मेवाड़ के महाराणा साँगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज की धर्मपत्नी थीं। मेड़ता जागीर (जोधपुर राज्य) के चौकड़ी गाँव में वि० सं० १५५५ के आसपास इनका जन्म हुआ था। बचपन से ही मीराँबाई में भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य भक्ति थी। युवावस्था में ही विधवा हो जाने पर वे अपना सारा समय साधु-महात्माओं के सत्सङ्ग और श्रीकृष्णभक्ति में, जो इनके पितृकुल में पीढ़ियों से चली आती थी, बिताने लगीं, मीराँ की इस प्रवृत्ति से उनके देवर और तत्कालीन महाराणा विक्रमादित्य अप्रसन्न होकर इन्हें कई प्रकार से सताने लगे। विषपान कराये जाने पर भी मीराँ का बाल तक बाँका न हुआ। फिर तीर्थयात्रा के लिये मेवाड़ छोड़कर इन्होंने स्थायी रूप से द्वारकापुरी में निवास किया, जहाँ वि० सं० १६०३ के लगभग इनका मृत्यु-काल माना जाता है। मीराँबाई की

गणना उच्च कोटि के भक्त कवियों (सगुण धारा, कृष्ण-शाखा) में होती है और हिन्दी-स्त्री-कवियों में इनका सर्वोच्च स्थान है। मीराँबाई के पदों (भावपूर्ण भजनों) का, जिनमें हृदय की मर्मस्पर्शिनी वेदना और भक्त की प्रेममय तल्लीनता की स्रोतस्विनी बहती है, राजस्थान, गुजरात आदि प्रान्तों में बहुत प्रचार है। मीराँ की कविता की भाषा राजस्थानी और सुगम ब्रजभाषा या इनका मिश्रण है।

केशवदास—

इनका जन्म वि० सं० १६१२ में ओड़छा के एक सनाढ्य ब्राह्मण-कुल में हुआ था। इनके घराने में बराबर संस्कृत के अच्छे पण्डित होते आये थे। ये अपने समय में प्रधान साहित्य-शास्त्रज्ञ कवि माने जाते थे। इनके समय से कुछ पूर्व ही रस, अलङ्कार आदि काव्याङ्गों के निरूपण की ओर कवियों का ध्यान आकृष्ट हो चुका था। संस्कृत के विद्वान् होने से इन्होंने भी अलङ्कार और रस-शास्त्र पर क्रमशः 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' नामक ग्रन्थ लिखे। इनके प्रबन्ध-काव्य 'रामचन्द्रिका' की भी, जिसका एक अंश इस सङ्कलन में उद्धृत है, पर्याप्त प्रसिद्धि है। इसमें अलङ्कारों की बहुत भरमार है और सम्बन्ध-निर्वाह जैसा चाहिए वैसा नहीं हो सका। जान पड़ता है कि यह ग्रन्थ "केवल चमत्कार और शब्द-कौशल दिखाने के लिए रचा गया है, न कि हृदय की सच्ची प्रेरणा से।" उपर्युक्त तीन ग्रन्थों के सिवा इन्होंने चार और पुस्तकें लिखीं, जिनमें 'विज्ञान-गीता' मुख्य है। केशवदास की कविता के सम्बन्ध में यह कहावत प्रचलित है कि "कवि को दीन न चहै बिदाई। पूछै केशव की कविताई।" केशव बड़े रसिक जीव थे। अपनी वृद्धावस्था में एक बार जब ये कुएँ पर बैठे हुए थे, स्त्रियों ने इनको 'बाबा' शब्द से सम्बोधन किया; इसपर इन्होंने पश्चात्तापपूर्वक यह दोहा कहा था—'केशव केसनि अस करी बैरिहु जस न कराहिं। चन्द्रवदनि मृगलोचनी बाबा कहि कहि जाहिं॥' यद्यपि केशवदास की वाणी में सूरदास और तुलसीदास की सरसता एवं

तन्मयता का अभाव है, तो भी शास्त्रीय पद्धति पर साहित्य-मीमांसा का मार्ग प्रशस्त करने के लिए हिन्दी-साहित्य पर इनका ऋण बना रहेगा। इनका मृत्यु-काल वि० सं० १६७४ के आसपास है।

रसखान—

इनका जन्म विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में दिल्ली के एक पठान सरदार के घराने में हुआ था। ये बड़े कृष्ण-भक्त और गोसाईं विट्ठलनाथजी के कृपापात्र शिष्य थे। कहते हैं, कि जिस स्त्री पर ये आसक्त थे, वह इनका अनादर किया करती थी। एक दिन श्रीमद्भागवत के फ़ारसी-अनुवाद से कृष्ण के प्रति गोपियों की अनन्य भक्ति और अलौकिक प्रेम का वर्णन पढ़कर इन्हें ख़याल हुआ कि जिसपर इतनी गोपियाँ अपने प्राण न्योछावर करती हैं, उसी वृन्दावन-विहारी से क्यों न मन लगाया जाय। इसी बात पर रसखान वृन्दावन चले गये। इन्होंने अपने पद्यों में ऐसे सुन्दर उद्गार प्रकट किये कि सर्वसाधारण में प्रेम या शृङ्गार-सम्बन्धी कवित्त सवैयों की 'रसखान' संज्ञा प्रचलित हो गई, जैसे 'कोई रसखान सुनाओ'। इनकी भाषा सरल, चलती और शब्दाडम्बर-शून्य होती है। अब तक इनकी दो छोटी-छोटी पुस्तकें—'प्रेमवाटिका' (दोहे; रचना-काल वि० सं० १६७१) और 'सुजान रसखान' (कवित्त-सवैया)—प्रसिद्धि में आई हैं। इनकी पद्य-रचना का परिमाण अधिक न होने पर भी वह अनुप्रास तथा भावों की सुन्दर छटा के साथ प्रेमियों के लिये मर्मस्पर्शिनी है। इस पुस्तक के पद्य 'रसखान और घनानन्द' से लिए गए हैं। वस्तुतः रसखान की कविता 'यथा नाम तथा गुणः' को चरितार्थ करती है।

बिहारीलाल—

बिहारीलाल चौबे ब्राह्मण थे। इनका जन्म ग्वालियर के पास बसुवा-गोविन्दपुर गाँव में वि० सं० १६६० के लगभग माना जाता है। इन्होंने बाल्यावस्था बुन्देलखण्ड में बिताई और जवानी अपनी ससुराल-मथुरा में। ये जयपुर के मिर्ज़ा राजा जयसिंह के दरबार में रहे, जहाँ

इन्हें एक एक दोहे पर एक एक अशरफ़ी का मिलना ही इनके यथेष्ट सम्मान का परिचायक है। महाराज जयसिंह की इच्छा के अनुसार ये दोहे बनाते रहे। शनैः-शनैः दोहों की संख्या बढ़ने पर इनका अपूर्व ग्रन्थ 'सतसई', जिसमें लगभग ७०० दोहों का संग्रह है, तैयार हुआ। इस संग्रह के दोहे 'सतसई' से उद्धृत हैं। इस ग्रन्थ का जनता में इतना प्रचार हुआ कि इसपर दर्जनों टीकाएँ हो चुकीं और अब तक नई नई होती जा रही हैं। इस मुक्तक काव्य में विविध विषयों के परस्पर असम्बद्ध फुटकर दोहों का संग्रह है। सतसई के दोहों में शृङ्गार-रस की प्रधानता है। सुकवि बिहारीलाल की यह विशेषता है कि इन छोटे-छोटे दोहों में भी इन्होंने बहुत गंभीर भाव भर दिये हैं। ग्रन्थ की रचना सादी और स्वाभाविक ब्रजभाषा में हुई है। वि० सं० १७२० के आसपास इनका स्वर्गवास माना जाता है।

भूषण—

वि० सं० १६७० में कानपुर ज़िले के तिकवाँपुर गाँव में भूषण का जन्म हुआ था। ये सुप्रसिद्ध कवि मतिराम और चिन्तामणि के भाई तथा वीर-रस के विख्यात कवि हुए हैं। इनके असली नाम का पता नहीं चलता। चित्रकूट के राजा रुद्रराम सोलंकी से इन्हें 'कविभूषण' की उपाधि मिली थी, तभी से ये 'भूषण' नाम से ही प्रसिद्ध हुए। पन्ना-नरेश महाराज छत्रसाल ने इनका बड़ा सम्मान किया था। ये वीरकेसरी छत्रपति शिवाजी के दरबार में भी रहे थे। भूषण की रग-रग में हिन्दू जाति का अभिमान भरा हुआ था, इसलिये उसका अधःपतन इनके लिये असह्य था। इसी से इन्होंने अन्याय-दमन में तत्पर और हिन्दू धर्म के सच्चे संरक्षक दो इतिहास-प्रसिद्ध वीर नरेशों—छत्रसाल और शिवाजी—की कृति को ही अपनी ओजस्विनी और वीरदर्पपूर्ण काव्य-रचना का विषय बनाया। भूषण की रचनाओं के सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिए कि झूठी खुशामद के लिए इन्होंने अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा नहीं लिखी,

किन्तु हिन्दू जाति के इस प्रतिनिधि कवि ने अपनी कविता में अपने हृदय के सच्चे उद्‌गारों को प्रकट किया है। भूषण की यह विशेषता है कि इन्होंने अपनी लेखनी से मधुर और सुकोमल व्रजभाषा में भी वीर रस का अविरल स्रोत बहाया है। 'शिवराजभूषण', 'शिवाबावनी' और 'छत्रसाल-दशक' इनके मुख्य ग्रन्थ हैं। इनका मृत्युकाल संवत् १७७२ माना जाता है।

कविराजा बाँकीदास —

इनका जन्म वि० सं० १८३८ में जोधपुर राज्य के पचपद्रा परगने के भांडियावास गाँव में आसिया चारण-कुल में हुआ था। बचपन में इन्होंने अपने पिता से मरुभाषा के गीत, कवित्त, दोहे आदि सीखकर काव्य-रचना का श्रीगणेश किया था। सोलह वर्ष की आयु तक घर पर शिक्षा पाकर ये जोधपुर चले गये, जहाँ पाँच वर्ष तक भिन्न-भिन्न गुरुओं से संस्कृत-साहित्य, व्याकरण आदि विविध विषयों का अध्ययन करते रहे। जोधपुर के विद्या-रसिक नरेश मानसिंहजी ने अपने गुरु से बाँकीदासजी की कवित्व-शक्ति की प्रशंसा सुनकर इन्हें अपने दरबार में बुलाया। इनकी काव्य-रचना से अत्यन्त प्रसन्न होकर उक्त नरेश ने इन्हें लाख पसाव (लक्षदान) तथा उसकी पूर्ति में दो गाँव दिये और इनसे भाषा-साहित्य के ग्रन्थों का अध्ययन किया। स्वतन्त्र प्रकृति के होने से बाँकीदास एक स्पष्ट वक्ता और निर्भीक कवि थे। ये डिंगल, व्रजभाषा एवं संस्कृत के आशुकवि और उत्कृष्ट विद्वान् थे। इनकी डिंगल-पद्य-रचना चमत्कारपूर्ण तथा प्रसाद-गुण-सम्पन्न है और वीर-रस की कविता अनुपम और ओजस्विनी है। इन्होंने विशेषतः डिंगल भाषा में छोटी-छोटी २४ पुस्तकें लिखीं, जिनमें 'सूर-छतीसी', 'सीह-छत्तीसी', 'वीरविनोद', 'धवल-पचीसी', 'दातार-बावनी', 'नीति-मंजरी', (प्रस्तुत कविता इससे उद्धृत है) 'मावड़िया-मिजाज', 'मोह-मर्दन', 'चुगल मुख-चपेटिका', 'कुकवि-बत्तीसी', विदुर बत्तीसी', 'सुर-जाल भूषण' तथा 'गङ्गालहरी' आदि १७ पुस्तकों को काशी-नागरीप्रचारिणी सभा ने 'बाँकीदास-ग्रन्थावली' शीर्षक से दो भागों में प्रकाशित किया है।

बाँकीदास कवि ही नहीं, किन्तु इतिहासप्रेमी भी थे। इन्होंने बहुतसी ऐतिहासिक बातों का सुन्दर एवं बृहत् संग्रह किया था, जो अब तक अप्रकाशित है।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र—

[आपका परिचय गद्य-रत्न-माला, पृ० ४८४-८५ में छपा है।]

आपकी भाषा ललित, ओजस्विनी और चुभती हुई है। कई एक सभाओं और क्लबों की स्थापना के अतिरिक्त आपने 'कविवचनसुधा', 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' और 'हरिश्चन्द्र-मेगज़ीन' नामक पत्र-पत्रिकाएँ निकालीं। भारतेन्दुजी ने कविता-प्रवाह को बदल दिया, जिससे पुराने ढंग की कविता के स्थान में नई, भावपूर्ण और सामयिक पद्य-रचना होने लगी। इनकी कविता ब्रजभाषा और खड़ी बोली में हुई है। शुद्ध हिन्दी के पक्ष-पाती होने से इन्हें उर्दू-मिश्रित भाषा पसंद नहीं थी। इनके लगभग २७ काव्यों में 'प्रेममाधुरी' तथा 'प्रेमफुलवारी' मुख्य हैं। 'गङ्गा-गरिमा' और 'पावस मसान' 'सत्यहरिश्चन्द्र' नाटक के, 'नारद की वीणा', 'वह छवि' एवं 'यमुना-वर्णन' 'श्रीचन्द्रावली' नाटिका के और 'प्रेम-महिमा' 'नील-देवी' नामक ऐतिहासिक गीतिरूपक के उद्धरण हैं।

श्रीधर पाठक—

वि० सं० १९१६ में पाठकजी का जन्म आगरा ज़िले में जोंधरी गाँव के सारस्वत ब्राह्मण-कुल में हुआ था। इन्होंने घर पर संस्कृत पढ़ी। स्कूल से एंट्रेंस परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् इन्होंने सरकारी नौकरी कर ली। अपने कार्य में बड़ी तत्परता दिखाने से सरकार में इनकी बहुत प्रशंसा हुई। शनैः-शनैः उन्नति करते हुए ये संयुक्त प्रान्तीय सरकार के दफ़्तर के सुपरिंटेंडेंट बनाए गए। फिर पेंशन लेकर आप प्रयाग में रहने लगे। पाठकजी ने ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में अपनी कविता लिखी है, परन्तु इनकी ब्रजभाषा की काव्य रचना अधिक सरस और मधुर है। ये खड़ी बोली के प्रारम्भिक कवियों में थे। इनकी रचनाओं में शुद्ध और

काव्योपयोगी शब्दों का बहुत ध्यान रखा गया है। वस्तुतः पाठकजी 'सुघराई' की मूर्ति और प्राकृतिक सौन्दर्य के बड़े उपासक थे। 'काश्मीर-सुखमा' (इससे 'काश्मीरसुखमा' उद्धृत है), 'देहरादून', आदि रचनाओं में इनका प्रकृति-प्रेम खूब झलकता है। इनके 'ऊजड़ ग्राम', 'श्रान्त पथिक' और 'एकान्तवासी योगी' शीर्षक अँगरेज़ी-कवि गोल्डस्मिथ के काव्यों के हिन्दी-अनुवाद भी स्वतंत्र रचनाओं जैसे सरस सुन्दर हुए हैं। 'भारतगीत' में इनकी भारत-विषयक कविताओं का संग्रह है। 'मनोविनोद' (इससे 'कायर', 'हिमालय' और 'वृन्दावन' उद्धृत हैं) में इनकी स्फुट कविताओं का सुन्दर संकलन हुआ है। 'वन शोभा' पद्य 'कविता-कौमुदी' (भाग २) से लिया गया है। अँगरेज़ी और संस्कृत दोनों के काव्य-साहित्य से खूब परिचित होने से पाठकजी की रुचि अत्यन्त परिष्कृत थी। इनके पद्यों में चलती और रसीली भाषा के साथ कोमल एवं मधुर संस्कृत-पद-विन्यास देख पड़ता है वस्तुतः पाठकजी अत्यन्त भावुक, सुरुचिसम्पन्न एवं प्रतिभाशाली कवि थे। कुछ वर्ष पूर्व इनका स्वर्गवास हुआ।

नाथूराम शंकर शर्मा—

शंकरजी का जन्म वि० सं० १९१६ में अलीगढ़ ज़िले के हरदुआगंज क़स्बे में हुआ था। तेरह वर्ष की आयु में आपने काव्य-रचना का आरम्भ किया था। आपका हिन्दी के पुराने कवियों में स्थान है। पहले शंकरजी ब्रजभाषा में बड़ी सुन्दर और गठी हुई काव्य-रचना करते थे। इस पुस्तक में चुनी हुई 'स्फुट पद्य'-शीर्षक रचना इनकी वियोग-सम्बन्धी कविता का एक नमूना है। पीछे से आप खड़ी बोली में भी खूब लिखने लगे। आर्यसमाज में अन्धविश्वास और सामाजिक कुरीतियों के उग्र विरोध की प्रवृत्ति बहुत समय तक जारी रही। आर्यसमाज से शर्माजी का सम्बन्ध रहने के कारण इनकी रचनाओं में भी उसी अन्तर्वृत्ति का आभास देख पड़ता है। फब्तियाँ और फटकार इनके पद्यों की एक विशेषता है। वर्णवृत्त की भाँति मात्रिक और मुक्तक छंदों में भी वर्णों की समान संख्या

रखकर आपने काव्य-सम्बन्धी एक कड़े नियम को निवाहा है। इनकी कविता में अनुप्रास, भाव गाम्भीर्य और शब्द-लालित्य खूब मिलता है। 'शंकरसरोज', 'अनुरागरत्न' और 'वायसविजय' आपके मुख्य ग्रन्थ हैं। कुछ वर्ष पूर्व आपका स्वर्गवास हुआ है। आपके पद्य क्रमशः 'सुधा' और कविता-कौमुदी (भाग २) से उद्धृत हैं।

वाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर'—

वाबू जगन्नाथदासजी का जन्म वि० सं० १९२३ में काशी के एक प्रतिष्ठित अग्रवाल-परिवार में हुआ था। इनके पिता वाबू पुरुषोत्तमदास भारतेन्दुजी के मित्र थे। उनके सत्संग से रत्नाकरजी में भी काव्य की ओर अनुराग उत्पन्न हुआ और छोटी उम्र में ही ये कविता लिखने लगे। इनके पूर्वज बादशाही सेवा में उच्च पदों पर रहे थे, जिससे इनके घराने में फ़ारसी का मान होता रहा। आपने भी बी० ए० की परीक्षा के लिए फ़ारसी पढ़ी थी और पहले उसी में कविता करते थे, परन्तु शनैः-शनैः आप में हिन्दी-प्रेम जागृत हुआ और हिन्दी में आपकी कवित्व-शक्ति का विकास होने लगा। रत्नाकरजी प्राचीन साहित्य के अपूर्व मर्मज्ञ थे। इन्होंने अनेक प्राचीन काव्यों का सुसम्पादन कर उन्हें छपवाया और बिहारी की 'सतसई' पर 'बिहारी-रत्नाकर' नाम की उत्कृष्ट टीका लिखी। अपने अन्तिम काल में आप सूरसागर का सम्पादन कर रहे थे। रत्नाकरजी आधुनिक युग के ब्रजभाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि थे। प्राचीन पद्धति पर लिखी हुई इनकी चुस्त और ओजस्विनी कविता को पढ़कर देव या पद्माकर का स्मरण होता है। 'हिंडोला', 'हरिश्चन्द्र', 'गंगावतरण', 'उद्धव-शतक', 'कलकाशी' तथा 'शृंगारलहरी' आपकी सुप्रसिद्ध रचनाएँ हैं। 'गंगावतरण' पर इन्हें हिन्दुस्तानी एकेडेमी से ५००) रु० का पुरस्कार मिला था। ई० सं० १९३२ में इनका स्वर्गवास होने के पश्चात् काशी-नागरीप्रचारिणी सभा ने इनकी समस्त काव्य-रचनाओं का 'रत्नाकर' शीर्षक अत्यन्त सुन्दर संग्रह प्रकाशित किया। रत्नाकरजी अयोध्या नरेश

के प्राइवेट सेक्रेटरी थे। उनकी मृत्यु के पश्चात् आप महारानी साहिबा के प्राइवेट सेक्रेटरी रहे थे। इस पुस्तक की कविता 'रत्नाकर' से उद्धृत है।

पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'—

उपाध्यायजी का जन्म वि० सं० १९२२ में युक्त प्रान्त के आज़मगढ़ ज़िले के निज़ामाबाद क़स्बे में सनाढय ब्राह्मण-कुल में हुआ था। सं० १९३६ और १९४४ में क्रमशः वर्नाक्युलर मिडिल और नॉर्मल परीक्षा पास करने के पश्चात् आप अपने क़स्बे के तहसीली स्कूल में अध्यापक और तदनन्तर क़ानूनगो रहे। क़ानूनगो-पद से पेंशन लेकर आप काशी के हिन्दू-विश्वविद्यालय में अवैतनिक अध्यापक हुए। कविता के क्षेत्र में उपाध्यायजी का आसन बहुत ऊंचा है। अतुकान्त छन्द में लिखा हुआ आपका 'प्रियप्रवास' महाकाव्य, जिससे इस पुस्तक में 'प्रातःकाल-वर्णन' लिया गया है, आधुनिक युग का एक अत्यन्त सुन्दर काव्य-ग्रन्थ है। इसमें मधुर व्यंजना के साथ संस्कृत-गर्भित खड़ी बोली में गोप-गोपिकाओं, यशोदा और राधा-कृष्ण के प्रेम का अत्यन्त भावपूर्ण वर्णन है। उपाध्यायजी ने बोलचाल की भाषा में बड़ी चुटीली उक्तियां कही हैं, जिनमें यत्र-तत्र कहावतों और मुहावरों का बहुत उपयुक्त प्रयोग हुआ है। हरिऔधजी की यह विशेषता है कि आप सरल-से-सरल या कठिन-से-कठिन दोनों प्रकार की पद्य-रचना सफलतापूर्वक कर सकते हैं। आपकी रचनाओं में 'प्रियप्रवास', 'चुभते चौपदे', 'चोखे चौपदे', 'बोलचाल' और 'रसकलस' उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं। 'हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास' विषय पर पटना-विश्वविद्यालय में दिये हुए आपके मननीय व्याख्यान गत वर्ष बृहद् ग्रन्थ-रूप में प्रकाशित हुए हैं।

बाबू मैथिलीशरण गुप्त—

गुप्तजी का जन्म वि० सं० १९४३ में झाँसी ज़िले के चिरगाँव क़स्बे में बाबू रामचरण गुप्त (अग्रवाल वैश्य) के यहां हुआ था। ये आचार्य महावीर-प्रसादजी द्विवेदी के शिष्य और अनुयायी हैं। द्विवेदीजी की भाँति इनकी

रचनाओं में भी व्याकरण-संबंधी त्रुटियाँ नहीं रहतीं। द्विवेदीजी के सम्पादन-काल में इनकी कविताएँ 'सरस्वती' में प्रकाशित होती रहती थीं। इनके 'जयद्रथ-वध' काव्य में खड़ी बोली का अच्छा सौष्टव देख पड़ता है, किन्तु 'भारत-भारती' पुस्तक इनकी सर्वप्रिय रचना हुई है। इस पुस्तक में गुप्तजी ने स्वच्छ और परिष्कृत खड़ी बोली में भारत की अतीत, वर्तमान और भावी दशा का वर्णन लिखा है। गुप्तजी की कविताएँ देशप्रेम से ओतप्रोत हैं, अतः आप इस युग के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं। आपके काव्यों ने नवयुवकों में राष्ट्रीय भावना के साथ-साथ हिन्दी-कविता के लिये प्रेम उत्पन्न किया है। आपने खड़ी बोली में उत्कृष्ट कविता रचकर लोगों के इस प्रारम्भिक विचार को निर्मूल सिद्ध कर दिया कि कविता के लिए खड़ी बोली उपयुक्त नहीं हो सकती। हिन्दी-काव्य-जगत् में आपका नाम जितना प्रसिद्ध हुआ, उतना सभवतः और किसी कवि का नहीं। वि० सं० १९८८ में प्रकाशित 'साकेत' महाकाव्य आपकी सर्वोत्कृष्ट कृति है। अपने क़स्बे में भी आपने 'साहित्य-प्रेस' खोला है। साहित्य सेवा ही आपके जीवन का व्यवसाय है। आपकी मौलिक रचनाओं में 'भारत-भारती', 'जयद्रथ-वध', 'साकेत', 'यशोधरा', 'हिन्दू', 'पंचवटी', 'गुरुकुल', 'शकुन्तला', ('शकुन्तला की विदा' इसी से उद्धृत है), 'पद्य-प्रबंध' ('मातृभूमि' उद्धृत है), 'झंकार' ('झंकार' और 'यात्री' उद्धृत हैं) एवं 'त्रिपथगा' और अनुवादों में 'मेघनाद वध', 'विरहिणी व्रजाङ्गना', 'वीराङ्गना', 'पलासी का युद्ध' और 'रुबाइयात उमर ख़य्याम' उल्लेखनीय हैं।

पंडित रामनरेश त्रिपाठी—

त्रिपाठीजी का जन्म वि० सं० १९४६ में युक्तप्रान्त के जौनपुर ज़िले के कोइरीपुर गाँव में हुआ था। आपने भारत में दूर-दूर तक यात्रा कर अपने काव्यों में भूस्वर्ग काश्मीर, सेतुबंध रामेश्वर आदि देशों और स्थानों का सुन्दर प्रकृति-वर्णन लिखा है। 'कविता-कौमुदी' के दो भागों में आपने प्राचीन और आधुनिक काल के प्रमुख हिन्दी-कवियों का परिचय एवं

कविता-संग्रह प्रकाशित किया है। आपका ग्राम-गीतों का बृहत्-संग्रह भी एक अनूठी वस्तु है। खड़ी बोली के कवियों में त्रिपाठीजी का सम्माननीय स्थान है। आपकी कविता सरस, सुबोध, मनोहारिणी और उत्कृष्ट भावों से ओतप्रोत होती है। भाषा संस्कृतमयी होने पर भी जोरदार और परिष्कृत है। 'पथिक' (जिसका 'प्रकृति-वर्णन' एक उद्धरण है), 'मिलन' और 'स्वप्न' आपके मुख्य ग्रन्थ हैं। इनके सिवा 'कविता-कौमुदी' (६ भाग), 'स्वप्नों के चित्र', मानसी' आदि भी आपकी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। 'कहाँ' और 'जागरण' कविताएँ क्रमशः 'माधुरी' और 'त्रिवेदी अभिनन्दन-ग्रन्थ' से उद्धृत हैं।

बाबू सियारामशरण गुप्त—

आपका जन्म वि० सं० १९५२ में हुआ था। आप कविवर श्रीमैथिलीशरण गुप्त के छोटे भाई हैं। अपने ज्येष्ठ भ्राता की भाँति आपने भी कवि हृदय पाया है। अपनी काव्य रचनाओं में आपने सामाजिक कुरीतियों पर हृदय में चुभनेवाली चुटकियाँ ली हैं। मैथिलीशरणजी की तरह इनकी भाषा भी संस्कृतमय, सरल एवं सुबोध खड़ी बोली है। इनकी कविता करुण-रस-प्रधान होती है। समय की पुकार को इनकी लेखनी ने जनता तक बड़ी सफलता से पहुंचाया है। आपकी रचनाओं में 'अनाथ', 'मौर्य-विजय', 'दूर्वादल', 'विषाद', 'पाथेय', और 'आर्द्रा', (जिसका 'एक फूल की चाह' एक अंश है) उल्लेखनीय हैं। इधर कुछ समय से आप नाटक, उपन्यास और कहानियाँ भी लिखते हैं, जिनमें 'पुण्यपर्व', 'अन्तिम-आकांक्षा', 'गोद' और 'मानुषी' मुख्य हैं।

ठाकुर गोपालशरणसिंह—

ठाकुर साहब का जन्म वि० सं० १९४८ में हुआ था। आप सेंगर-वंशी क्षत्रिय और रीवाँ राज्य (मध्यभारत) में (नई गढ़ी के) प्रथम श्रेणी के सरदार हैं। आपकी स्कूली शिक्षा मैट्रिक तक हुई। तत्पश्चात् आपने स्वाध्याय से ही ज्ञान-वर्धन किया है। बचपन से ही आपको

कविताप्रेम रहा है। बीस वर्ष की आयु में आपकी काव्य-रचना का आरम्भ हुआ। पहले आप व्रजभाषा में लिखते थे, पर पीछे से खड़ी बोली में कविता करने लगे। आपकी कविताएँ प्रायः 'सरस्वती' में छपती रही हैं। आपकी स्फुट कविताओं का एक सुन्दर संग्रह 'माधवी' नाम से प्रकाशित हुआ है; इसी से इस पुस्तक की कविताएँ ली गई हैं। ठाकुर साहब की एक विशेषता यह है कि आप पुराने कवियों के जैसे भावों को खड़ी बोली के साँचे में ढालकर उन्हें कहीं सुन्दर बना देते हैं। आपकी कविता सरल, मनोहर, प्रवाहमयी और प्रसादगुण-सम्पन्न होती है। खड़ी बोली में घनाक्षरी-रचना में आप सफल हुए हैं।

श्रीयुत वियोगी हरि—

[गद्य-रत्न-माला, पृ० ४६१ में आपका परिचय दिया गया है।] हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से आपको 'वीरसतसई' पर, जिसमें आपने व्रजभाषा में भारत के प्रसिद्ध वीरों की सुन्दर प्रशस्तियाँ लिखी हैं, १२००) रु० का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है। वियोगी हरिजी व्रजपति, व्रजभाषा और व्रजभूमि के अनन्य उपासक हैं। आपने प्राचीन कृष्णभक्त कवियों की शैली पर बहुतसे रसीले पदों की रचना की, जिन्हें पढ़कर रसिक भक्त 'बलिहारी है' कहे बिना नहीं रहते। इस रूखे ज़माने में ऐसी अनन्य प्रेमधारा बहुत कम लोगों में बहती है। 'वीरबत्तीसी' और 'वीरबाहु' क्रमशः 'वीरसतसई' और 'सुधा' से लिए गये हैं।

श्रीसुमित्रानन्दन पन्त—

पं० सुमित्रानन्दन पन्त पहाड़ी ब्राह्मण थे। इनका जन्म वि० सं० १९५८ में अल्मोड़े में हुआ था। इनके पिता अत्यन्त धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। पिता में जो सहृदय भावना धर्मनिष्ठा के रूप में विद्यमान थी, वही पुत्र में कवित्व-रूप में प्रकट हुई। पन्तजी ने एफ़० ए० तक शिक्षा पाई, पर कॉलेज की अप्राकृतिक शिक्षा रुचिकर न होने से उसके बन्धन से मुक्त होकर आपने प्रकृति की गोद को ही अपना शिक्षणालय बनाया। कविता-

क्षेत्र में आपने नये ढंग का पौधा लगाया है, इसी से आप हिन्दी-कविता के नवीन-युग-प्रवर्त्तक माने जाते हैं। आपकी अपनी स्वतन्त्र शैली है, जिसमें भाषा-सौष्ठव, प्रवाह और मधुरता देख पड़ती है। इनकी भाषा संस्कृतमय खड़ी बोली है। अँगरेज़ी-साहित्य के अनुशीलन के फलस्वरूप आपकी रचनाओं में अँगरेज़ी-भावों का रहना स्वाभाविक है, पर वे शनैः-शनैः हिन्दी के अनुरूप होते जाते हैं। आपके ग्रन्थों में 'उच्छ्वास', 'वीणा', 'पल्लव', 'ग्रन्थि', 'गुंजन' और 'ज्योत्स्ना' उल्लेखनीय हैं। 'बादल' आपके 'पल्लव' का एक अंश है।

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान—

श्रीमती सुभद्राकुमारी का जन्म वि० सं० १९६१ में प्रयाग के एक क्षत्रिय-कुल में हुआ था। इनकी शिक्षा प्रयाग के क्रॉस्थवेट गर्ल्स हाई-स्कूल में हुई। सं० १९७६ में खंडवा के ठाकुर लक्ष्मणसिंह चौहान, बी० ए० एल्-एल्० बी० के साथ इनका विवाह हुआ और अब उनके साथ जबलपुर में रहती हैं। बाल्यकाल से ही इन्हें कविता की धुन रही है। इनके पिताजी की कविता और गाने की ओर विशेष रुचि थी। उनके भजनों को सुनकर इनके मन में कविता की लहरें उठा करतीं। आजकल हिन्दी-स्त्री-कवियों में इनका सर्वोच्च स्थान है। बाल्य-जीवन और देश-प्रेम इनकी कविता के मुख्य विषय हैं। इनकी कविता सुबोध, स्वाभाविक और भावमयी होती है। इनकी भाषा सीधी-सादी खड़ी बोली है, जिसमें कहीं-कहीं उर्दू-शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। सुभद्राजी की सजीव वर्णन-शैली से पाठक के सामने एक सुन्दर चित्र खिंच जाता है। इनकी कवित्व-शक्ति की यह एक विशेषता है कि किसी के कहने से या दी हुई समस्याओं पर सुन्दर कविता नहीं लिखी जाती, किन्तु हृदय में भावों के उमड़ने पर ही काव्य-रचना होती है, यही इनके पद्यों के हृदयग्राही होने का रहस्य है। इनका स्वभाव भावुक और बच्चों का सा सरल है; वही भावुकता और सरलता इनकी रचनाओं में ज्यों-की-त्यों झलकती है। इनकी काव्य-रचना

में शब्दाडम्बर अथवा कवित्व का शास्त्रीय पाण्डित्य नहीं देख पड़ता, किन्तु इनके स्थान में हृदय से निकली हुई सीधी और सच्ची बात है, जो पाठक के हृदय में चुभ जाती है। इनके 'बिखरे मोती' नामक कहानी-संग्रह और 'मुकुल' शीर्षक कविता-संग्रह (इससे तथा 'स्त्री-कवि-कौमुदी' से इस पुस्तक की कविताएँ ली गई हैं) दोनों पर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने, भिन्न-भिन्न अवसरों पर, सर्वश्रेष्ठ महिला लेखिका को दिया जानेवाला ५००) रु० का सेकसरिया पारितोषिक प्रदान किया है।

श्रीमती महादेवी वर्मा, एम्० ए०—

आपका जन्म वि० सं० १९६४ में फ़र्रुखाबाद में बाबू गोविन्दप्रसाद वर्मा, एम्० ए०, एल्-एल्० बी० के यहाँ हुआ था। इनके पिताजी की स्त्री-शिक्षा की ओर विशेष रुचि थी, जिसके फलस्वरूप महादेवीजी ने प्रयाग विश्वविद्यालय की एम्० ए० परीक्षा पास की। शिक्षा के साथ-साथ इनमें कविता की ओर झुकाव बढ़ता गया और इनकी काव्य-रचना में गम्भीरता और स्थायित्व आता गया। नई धारा के कवियों में इनका नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। इनकी मधुर एवं संगीतमय कविताएं एकदम भावुक जनों के हृदय में स्थान कर लेती है। आपका मत है कि कविता हृदय की एक 'फ़ीलिंग' है, जो पॉलिश करने से निर्जीव हो जाती है; इसीलिये आप एक बार लिखी हुई कविता को ज्यों-का-त्यों रहने देती है। 'नीहार' (इस पुस्तक की 'उस पार' कविता इसका एक अंश है), 'रश्मि' और 'नीरजा' आपके मुख्य कविता-ग्रन्थ है। अप्रैल सन् १९३५ ई० में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से आपको 'नीरजा' पर सेकसरिया पारितोषिक मिला है।

बाबू राय कृष्णदास—

[आपके परिचय के लिए देखो गद्य-रत्न-माला, पृ० ४९०-९१।]
आपका 'भावुक', शीर्षक पद्य-संग्रह उल्लेखनीय है। इस पुस्तक में आपकी कविताएँ क्रमशः 'द्विवेदी-अभिनन्दन-ग्रन्थ', 'माधुरी' और 'सुधा' से ली गई हैं।

बाबू जयशंकर 'प्रसाद'—

आपका जन्म वि० सं० १९४६ मे काशी के एक प्रसिद्ध वैश्य-कुल में हुआ था। आपने घर पर ही हिन्दी, संस्कृत, अँगरेज़ी और फ़ारसी की शिक्षा पाई। बचपन मे ही आपको कविता की रुचि रही है। आपने अतुकान्त कविता और रहस्यवाद-सम्बन्धी काव्य-रचना का आरम्भ किया। अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के कारण आपको कवीन्द्र रवीन्द्र की तरह नाटक, काव्य, उपन्यास कहानी सबके लिखने मे सफलता प्राप्त हुई है। भावुकता और भावों की मौलिकता प्रसादजी की रचनाओं के विशेष गुण हैं। इनकी शैली में बंगला भाषा की, जिसका आपने अच्छा अध्ययन किया है, छाप देख पड़ती है। आपने ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों मे कविताएँ की है। आप भावोपयोगी एवं संस्कृत-गर्भित भाषा लिखते हैं। आपके कविता-ग्रन्थों मे 'मन्वन्तर', 'कानन-कुसुम', 'झरना', 'आँसू' और 'चित्राधार' मुख्य हैं। 'भारत-महिमा' आपके 'स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य' नाटक से उद्धृत है। [प्रसादजी के विशेष परिचय के लिये देखो 'गद्य-रत्न-माला', पृ० ४८३-८४]।

'नीति-मञ्जरी' पर टिप्पणी

पृ० ३२. अहोणी—नहीं होनेवाला, अयोग्य। एह—यह। प्रकृत—स्वभाव। खळ—दुष्ट, शत्रु। रांमण—रावण। सोव्रनो—सुवर्ण का। सँधियाँ—सन्धि करने से। बचियौ—(क्या) बच सकता है? यांसूँ—इनसे। वीसरै—भूलता है। बंक—बाँकीदास का कथन है। राकेस नूँ—पूर्णचंद्र को। ऊचरै—बोलते हैं। बैण—वचन। किपाक—वृक्ष विशेष। खाधाँ—खाने से। वातों—बात ही बात में। विसावणा—उत्पन्न करना। सैणाँ—मित्र-जनों से। हासै—हँसी में। दोयण—दुर्जन।

पृ० ३३. पाडण—गिराने को। आहिज—यही। बक मूनि—हे बगुले मुनि! क्रत—कृत्य, कर्म। ऊपडै—प्रकट होते हैं। धकै—आगे। वाय—वायु। भीर—डरपोक के लिये।